अस्पृश्यता निवारण।

" छूत और अछूत " पूर्वार्ध मुद्रित होकर ग्राहकों के पास रवाना हुआ, उसे देखनेसे उत्तरार्धकी भी मांग आरही है; इस लिये यह उत्तरार्ध तैयार किया है। आशा है कि यह उत्तरार्ध भी पूर्वार्ध की तरह अपने क्षेत्र में कार्य करने के लिये समर्थ होगा।

औंध (जि. सातारा). १।२।२३

निवेदक,
श्रीपाद दामोदर सातवळेकर.
स्वाध्याय मंडल.

मुद्रक तथा प्रकाशक-- श्री. दा. सातवळेकर, भारत मुद्रणालय।
स्वाध्याय मंडल, औंध (जि. सातारा)

छूत और अछूत।

उत्तरार्ध।

भिन्न भिन्न प्रचलित धर्मों की दृष्टिसे छूत अछूत का विचार।

भाग १ वा।

(१) हिंदुधर्म—चार वर्णों में आपस में किस प्रकार व्यवहार होना चाहिए इस बात का विचार हिन्दुधर्म के अनुसार करना है। इस बात का कुछ विचार पहले हो चुका है, परन्तु यदि दूसरे धर्मों के साथ भी इस धर्म के मतों का विचार हो तो अनुचित न होगा। ईसाई या इस्लाम धर्म के सदृश हिन्दू धर्म अल्पकाल व्यापि नहीं है, वरन् सब धर्मों से प्राचीन है। जब जब विचार-क्रान्ति देश में हुई तब तब बडे और विचारशील पुरुषों के विचार तथा स्वार्थी जीवों के विचार भी इस धर्म में मिल गए। यथा प्राचीन ग्रन्थों में उदारता के विचार नजर आते हैं। परन्तु आधुनिक ग्रन्थों में संकुचित विचारों की वृद्धि होती गई है।

सब धर्म ग्रन्थों में प्राचीन ग्रन्थ वेद हैं। उन में चोर, लुटेरे, डकैत आदि दस्युओं को सजा देने की आज्ञाएं हैं। आज जिस प्रकार इनकी अलग जातियां मानी जाती हैं वैसी जातियां उस समय नहीं थी। वेदों से बहुत अधिक अर्वाचीन ग्रंथ महाभारत है। उसमें भी दस्यु की अलग जाती नहीं

मानी गई किन्तु यह बताया है कि जो लोग चोरी करते हैं तथा समाज को उपद्रव पहुंचाते हैं वे दस्यु हैं।

दृश्यन्ते मानुषे लोके सर्ववर्णेषु दस्यवः।
लिंगान्तरे वर्तमाना आश्रमेषु चतुर्ष्वपि॥ २३॥

महाभारत शांति० अ० ६५

मांधाता ने कहा है— 'मनुष्य समाज के चारों वर्णों में तथा चारों आश्रमों में दस्यु नजर आते हैं जिन के चिन्ह भिन्न भिन्न हैं।' ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्रों में और ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यास चार आश्रमों में दस्यु हैं। इस का भाव स्पष्ट ही है कि जिन लोगों में दस्यु के गुण हैं वे दस्यु हैं। पहले इस अर्थ का एक वचन आगया है कि जिन में ब्राह्मणत्व का लक्षण है उन्हे ब्राह्मण कहना चाहिए उसी के साथ आगे लिखा हुआ वचन भी देखना चाहिए—

संध्यां स्नानं जपं होमं देवतानित्यपूजनम्।
अतिथिं वैश्वदेवं च देवब्राह्मण उच्यते॥ २॥
शाके पत्रे फले मूले वनवासे सदा रतः।
निरतो अहरहः श्राद्धे स विप्रो मुनिरुच्यते॥ ३॥
वेदान्तं पठते नित्यं सर्वसंगं परित्यजेत्।
सांख्ययोगविचारस्थः स विप्रो द्विज उच्यते॥ ४॥
अस्त्राहताश्च धन्वानः संग्रामे सर्वसन्मुखे।
आरम्भे निर्जिता येन स विप्रः क्षत्र उच्यते॥ ५॥
कृषिकर्मरतो यश्च गवां च परिपालकः।
वाणिज्यव्यवसायश्च स विप्रो वैश्य उच्यते॥ ६॥
लाक्षालवणसंमिश्रं कुसुंभं क्षीरसर्पिषः।
विक्रेता मधुमांसानां स विप्रः शूद्र उच्यते॥ ७॥

चौरश्च तस्करश्चैव सूचको दंशकस्तथा ।
मत्स्यमांसे सदा लुब्धो विप्रो निषाद उच्यते ॥ ८ ॥
ब्रह्मतत्वं न जानाति ब्रह्मसूत्रेण गर्वितः ।
तेनैव स च पापेन विप्रः पशुरुदाहृतः ॥ ९ ॥
वापीकूपतडागानां आरामस्य सरःसु च ।
निःशंकं रोधकश्चैव स विप्रो म्लेच्छ उच्यते ॥ १० ॥
क्रियाहीनश्च मूर्खश्च सर्वधर्मविवर्जितः ।
निर्दयः सर्वभूतेषु विप्रश्चांडाल उच्यते ॥ ११ ॥

—— अत्रिस्मृति ।

' जो हर दिन स्नान, संध्या, जप, होम, देवतापूजन, अतिथि-सत्कार, वैश्वदेव आदि करता है उस द्विज को देव समझना चाहिए। जो कंद, मूल फल खाकर हर रोज श्रद्धा से काम करता है और जो वनवास ही में आनन्द मानता है, उस द्विज को मुनि कहना चाहिए। जो सब छोड कर नित्यप्रति वेदान्त का ही विचार करता है, जो सांख्य तथा योग का विचार करता है वह विप्र द्विज कहलाता है। शस्त्र अस्त्र लेकर युद्ध में जो विप्र शत्रु को पराजित करता है उसे क्षत्रिय कहना चाहिए। खेती, गौ आदि पशुओं का पालन, वाणिज्य आदि काम जो करता है उस विप्र को वैश्य समझना चाहिए। जो लाख, लवण, सुवर्ण, दूध, घी, शहद तथा मांस आदि वेचता है उस विप्र को शूद्र समझना चाहिए। जो विप्र चोर, लुटेरा, पातकी, हिंसक, मत्स्यमांस को आसक्ति करता है उसे निषाद कहते हैं। जो ब्राह्मणत्व को नहीं जानता परन्तु यज्ञोपवीत का गर्व करता है उसे इस पातक के कारण पशु कहते हैं। कुंआ, बावडी, तलाव, बगीचा, जलाशय आदि को निःशंक होकर प्रतिबंध करता है, उसे म्लेंछ कहते हैं।

जो क्रियाहीन है, धर्मभ्रष्ट है, मूर्ख है, निर्दय है तथा सब लोगों को दुःख देता है उस विप्र को चांडाल कहते हैं । '

इसमें बतया है कि गुण-कर्म-स्वभावसे किस किसको क्या नाम देना चाहिए। यह वचन महाभारतके उस वचनकी ही पुष्टि करता है जिस में कहा है कि सब वर्णों में गुप्त रूपसे दस्यु हैं। इस से मालुम होगा कि त्रैवर्णिकों में जो दस्यु हैं उन्हे कैसे पहिचानना चाहिए । यह भी बतलाया है कि इस प्रकार दस्युकी पहिचान हो जाने पर उनसे ब्राह्मण जैसा व्यवहार नहीं करना चाहिए। देखिए-

> यथा काष्ठमयो हस्ती यथा चर्ममयो मृगः ।
> यश्च विप्रोऽनधीयानः त्रयस्ते नाम बिभ्रति ॥१५७॥
>
> -मनु० अ० २

> ब्राह्मणस्त्वनधीयानः तृणाग्निरिव शाम्यति ।
> तस्मै हव्यं न दातव्यं नहि भस्मनि हूयते ॥१६८॥
>
> -मनु० अ० ३

' लकडी का हाथी, चमडेका हिरन तथा अध्ययन न करनें-वाला ब्राह्मण ये केवल नामधारी हैं ।' अर्थात् जिस प्रकार लकडी का हाती सच्चा हाती नहीं है उसी प्रकार अज्ञानी ब्राह्मण भी विप्र नहीं है । इसी प्रकारः— 'अज्ञानी ब्राह्मण का ब्राह्मणत्व घांस में पडी हुई अग्नि के समान थोडे ही समय में नष्ट हो जाता है । इस प्रकार के अज्ञानी को दान न देओ क्यों कि भस्म में हवन नहीं किया जाता । ' अज्ञानी ब्राह्मण यथार्थ में ब्राह्मण नहीं । इस अर्थ के जो वचन हैं वे कितने ही अलंकारिक क्यों न हों परन्तु वे सब इतना अवश्य बताते हैं कि चातुर्वर्ण्य का निश्चय गुणकर्म के अनुसार ही किया जाता है । इस बात का इन्कार कोई नहीं कर सकता ।

वैदिक काल की चातुर्वर्ण्य के सम्बन्ध में जो कल्पना है वह यह कि वे एक ही शरीर के अवयव हैं। यद्यपि यह बात सच है कि स्मृति- काल में इस भेद को स्पष्ट रीतिसे समझाया गया, तथापि उपर्युक्त आधारों का विचार करते हुए कोई भी इस बात को नहीं मिटा सकता कि उन भेदों के जड में जो भाव है वह न्यूनाधिकता से प्रकट हुआ ही है।

ब्राह्मण- कालके यज्ञ— युग में शूद्र हीन माने जाते थे। परन्तु उन्हे अपनी योग्यता बढाने के साधन विद्यमान थे। और वे ब्राह्मणों में भी मिला लिए जाते थे। यह बात आगे लिखे ऋषियों के हाल से विदित होता है— कवलऐलूप, ऐतरेय महीदास। पहले पहल कवल ऐलूप को यज्ञमंडप के ब्राह्मणों ने बाहर निकाल दिया था, परन्तु जब उसके मुंहसे वेदोंके सूक्त सुने तब उन्हे उसके ज्ञान का परिचय हुआ और तब उसे उन्होंने अपने में मिला लिया। इस कथा से यह स्पष्टतया विदित हो जाता है कि ब्राह्मण कालकी वर्ण व्यवस्था कैसी थी। इससे यह कहने में कोई हानि नहीं कि यद्यपि कुलकी ओर ध्यान देना आरंभ हुआ था परन्तु नीच कुलकी नीचता ज्ञानके कारण लुप्त होती थी।

वेदान्त धर्म के अनुसार यह भाव जागृत हुआ कि सब मनुष्य समान हैं और उन सबमें एकही आत्मतत्त्व विद्यमान है। यह उपदेश मुक्तकंठसे किया जाने लगा कि विद्या विनयसम्पन्न ब्राह्मण, गौ, हाथी, कुत्ता तथा चांडल पर समदृष्टि रखना चाहिए। यह बात संसार भर में जाहिर की गई कि परब्रह्मकी उपासना से चांडालका नीचत्व नष्ट हो जाता है, तथा उसको उच्चत्व प्राप्त होता है। किसी प्रकार की बात न छिपाकर स्पष्ट रीतिसे यह बताया गया कि चातुर्वर्ण्य-गुण-कर्म-स्वभाव से ही निश्चित किया जाता है। देखिए-

शमो दमस्तपः शौचं क्षांतिरार्जवमेव च।
ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम् ॥ ४२ ॥
शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम्।
दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम् ॥ ४३ ॥
कृषिगोरक्ष्यवाणिज्यं वैश्यकर्म स्वभावजम्।
परिचर्यात्मकं कर्म शूद्रस्यापि स्वभावजम् ॥ ४४ ॥

श्रीभगवद्गीता, अ० १८

'शम, दम, तप, शुद्धता, सहन- शक्ति, सीधापन, ज्ञान, विज्ञान, आस्तिक्य ये सब स्वभावही से उत्पन्न हुए ब्राह्मण के कर्म हैं। स्वभाव ही से उत्पन्न हुए क्षत्रिय के कर्म हैं शौर्य. तेज, धैर्य, दाक्षिण्य, युद्ध से न भागना, दान, तथा ईश्वर भाव। स्वभाव से उत्पन्न हुए वैश्य के कर्म हैं खेती, गोरक्षा तथा वाणिज्य। शूद्र का स्वाभाविक कर्म है परिचर्या।"

इस प्रकार स्वभाव को प्रधानता दी गई है। वेदान्त मत के अनुसार यह स्पष्ट बताया गया है कि जिसका जो स्वाभाविक गुण है वहीं उसका वर्ण है। ब्राह्मणवर्ण, जो कि सबसे श्रेष्ठ है, जन्म से साध्य नहीं किन्तु परमात्माके ज्ञानसे साध्य है। आगे लिखे उपनिषद् के वचन के अनुसार यह स्पष्ट है कि जिस किसी को वह ज्ञान प्राप्त होगा उसी को वह वर्ण प्राप्त होगा। देखिए-

ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यशूद्रा इति चत्वारो वर्णाः। तेषां वर्णानां ब्राह्मण एव प्रधान इति वेदवचनानुरूपं स्मृतिभिरप्युक्तम्। तत्र चोद्यमस्ति को वा ब्राह्मणो नाम? किं जीवः किं देहः किं जातिः किं कर्म किं धार्मिक इति? तत्र प्रथमो जीवो ब्राह्मण इति चेत् तन्न।

अतीतानागतानेकदेहानां जीवस्य एकरूपत्वात् एक-
स्याऽपि कर्मवशादनेकदेह संभवात् सर्व शरीरिणां
जीवस्यैकरूपत्वाच्च तस्मान्न जीवो ब्राह्मण इति ॥
तर्हि देहो ब्राह्मण इति चेत् तन्न। आचाण्डालादि-
पर्यंतानां मनुष्याणां पांचभौतिकत्वेन देहस्य एक-
रूपत्वात्। जरामरणादि धर्माधर्मादिसाम्यदर्शनात्।
ब्राह्मणः श्वेतवर्णः क्षत्रियो रक्तवर्णो वैश्यः पीतवर्णः
शूद्रः कृष्णवर्ण इति नियमाभावात्। पित्रादिशरीरदहने
पुत्रादीनां ब्रह्महत्यादोषसंभवाच्च ॥ तस्मान्न देहो ब्राह्मण
इति ॥ तर्हि जातिर्ब्राह्मण इति चेत् तन्न। तत्र जात्य-
न्तरजन्तुषु अनेक जातिसंभवा महर्षयो बहवः सन्ति।
ऋष्यशृंगो मृग्याः कौशिकः कुशात् ॥ जांबूको जम्बूकात्।
वाल्मीकिर्वल्मीकात्। व्यासः कैवर्तकन्यकायाम्।
शशपृष्ठात् गौतमः। वसिष्ठः उर्वश्याम्। अगस्त्यः
कलशे जात इति श्रुतत्वात्। एतेषां जात्या विनाऽपि
अग्रे ज्ञान—प्रतिपादिता ऋषयो बहवः सन्ति।
तस्मान्न जातिर्ब्राह्मण इति। तर्हि ज्ञानं ब्राह्मण इति
चेत् तन्न। क्षत्रियोऽपि परमार्थदर्शिनोऽभिज्ञा बहवः
सन्ति तस्मान्न ज्ञानं ब्राह्मण इति। तर्हि कर्म ब्राह्मण
इति चेत् तन्न। सर्वेषां प्राणिनां प्रारब्धसंचिताऽगा-
मिकर्मसाधर्म्यदर्शनात्। कर्मभिः प्रेरिताः सन्तो
जनाः क्रियाः कुर्वन्ति इति। तस्मान्न कर्म ब्राह्मण
इति। तर्हि धार्मिको ब्राह्मण इति चेत् तन्न। क्षत्रिया—
दयो हिरण्यदातारो बहवः सन्ति। तस्मान्न धार्मिको
ब्राह्मण इति। तर्हि को वा ब्राह्मणो नाम ? यः कश्चिदा-

त्मानं अद्वितीयं जातिगुणक्रीयाहीनं षडूर्मिषड् भावे-
त्यादिदोषरहितंसत्यज्ञानानंदानंतस्वरूपं स्वयं निर्वि-
कल्पं अशेषकल्पाधारं अशेषभूतांतर्यामित्वेन वर्तमानं
अंतर्बहिश्चाकाशवदनुस्यूतं अखंडानंदस्वभावं अप्रमेयं
अनुभवैकवेद्यं अपरोक्षतया भासमानं करतलाम-
लकवत् साक्षादपरोक्षीकृत्य कृतार्थतया कामरागा-
दिदोषरहितः शमदमादिसंपन्नो भावमात्सर्यतृष्णा—
शामोहादिरहितो दंभाहंकारादिभिरसंस्पृष्टचेताः वर्तते।
एवमुक्तलक्षणो यः स एव ब्राह्मणः इति श्रुतिस्मृति-
पुराणेतिहासानामभिप्रायः। अन्यथाहि ब्राह्मणत्वसि-
द्धिर्नास्त्येव। —वज्रसूचिकोपनिषद्

'श्रुति तथा स्मृति का कथन है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र चार वर्णों में ब्राह्मण श्रेष्ठ है। यहां इस बात का विचार करना है कि ब्राह्मण किसे कहना चाहिए। क्या जीव को ब्राह्मण कहें, या देह को? जाति को ब्राह्मण कहें या कर्म को कहें, या दातृत्व को? यदि जीवको ब्राह्मण कहें तो भी नहीं बनता क्यों कि भूत भविष्यत् और वर्तमान् कालके अनन्त देहोंमें जीवात्मा तो एकसा ही है। यदि देह को ब्राह्मण कहें तो भी नहीं बनता। क्यों कि द्विजों से चंडालतक सब (जातियों) के देह में पंच-तत्त्व एकही से हैं। जरा मरण आदि अवस्थाएं भी सब को समान ही हैं। ब्राह्मण का शरीर गोरा, क्षत्रिय का लाल, वैश्य का पीला तथा शूद्र का काला है यह भेद भी नहीं दीखता। यदि जाति को ब्राह्मण कहें तब भी नहीं बनता। क्यों कि ऋष्यश्रृंग, कौशिक जांबूक, वाल्मिकि, व्यास, गौतम, वसिष्ठ, अगस्त्य इत्यादि ऋषियों का जन्म यद्यपि नीच जाति में हुआ था तब भी

वे उच्च हुए। यदि ज्ञान को ब्राह्मण कहें तो वह भी नहीं हो सकता क्यों कि क्षत्रियादि में भी तो कोई लोग परमार्थदर्शी हैं। यदि कर्म को ब्राह्मण कहें तब भी नहीं बनता क्यों कि प्रारब्ध-संचित और आगामी कर्म सब मनुष्यों का पीछा किए हैं। यदि दातृत्व को ब्राह्मण कहें तो क्षत्रियादि कई लोग हिरण्य अर्थात् सुवर्ण का दान करनेवाले हैं तब ब्राह्मण कहें तो किसको कहें? जो मनुष्य अद्वितीय, अनंत, शुद्ध अखंडानंदस्वरूप परमात्माका साक्षात्कार द्वारा अनुभव करता है और जो काम-क्रोध आदि दोषों से अलग है और जिसमें शम, दम आदि गुण हैं, उसे ब्राह्मण कहना चाहिये। श्रुति, स्मृति, पुराण, इतिहास आदि का यही अभिप्राय है।'

ब्राह्मणत्व जाति से नहीं प्राप्त होता किन्तु ऊपर बताए हुए अनुभव से प्राप्त होता है। चांडाल को भी ऐसा ज्ञान प्राप्त हुआ ऐसा अनुभव हुआ तो उसे भी ब्राह्मण कह सकेंगे। उपर्युक्त उप-निषद्ने यही बात स्पष्ट रीतिसे तथा अधिकारयुक्त वाणीसे कही है। भागवतधर्म के भक्तिमार्ग के प्रचारक साधुसंतों ने जिस समानता का स्वीकार किया, मुसलमान, धेड, चमार तथा द्विज आदि जातियों के साथ उन्होंने जो समानता का वर्ताव किया उसका बीज, उसका आरंभ इसी उपनिषत्काल की उच्च कल्पना में है। पंढरपूर के मेले में यात्री जातपात, छूत अछूत या ऊंच नीच का भेद नहीं मानते वे समानता को ही उठा लेते हैं। यह बात बिलकुल भिन्न है कि वे घर लौटने पर इस भाव को भूल जाते हैं। परंतु उन में अब तक यह भावना जागृत है कि उपास्य देवता के पास सब लोग समान हैं। इस समानता के ज्ञान का उद्गम इसी उपनिषत्काल में हुआ है। उपनिषत्काल

की समानता का यह भाव है। उसमें छूत अछूत की कल्पनाको स्थान नहीं है।

भगवान् बुद्धजी ने इसी प्रकार समता तथा अहिंसा का पक्ष उठाया था। उनके मतों का प्रसार हिन्दुस्थान भर में हुआ। वह धर्म बाहर भी संसार में फैलने लगा, परन्तु उस हिसाब से हिन्दुओं का धर्म घटता चला। बुद्धजी के पश्चात् धर्म को भी विरोध करने वाला संप्रदाय निकला। कुमारिल भट्ट तथा शंकाराचार्य के प्रयत्न इसी लिए थे। यद्यपि शंकराचार्यने उपनिषत् धर्म का प्रचार किया, यद्यपि उन्होंने अद्वैत मत का झंडा खडा किया तथापि लोगों की मनःप्रवृत्ति जो एकबार बौद्ध धर्म की ओर से हट गई वह पुनः जातिभेद की ओर झुकती गई इस प्रवृत्ति को योग्य संचालन नहीं मिला इससे वह बढती ही गई और वर्तमान समय में उसने इस प्रचार बल पकडा है कि जहां पहले चार वर्ण थे आज चार पांच हजार जातियां, उपजातियां हो गईं हैं। बुद्धजी ने जिसका प्रकार किया था वह समानता तो जाती रही। अब उसके स्थान में यह समझ दृढ हो गई है कि हरएक जाति बिलकुल अलग है तथा उसके उपभेद भी भिन्न भिन्न हैं। कितनी ही उपजातियों में यद्यपि रोटीव्यवहार होता है, परन्तु बेटीव्यवहार नहीं होता। कितनी ही जातियां ऐसी हैं जिनमें रोटीव्यवहार भी बंद हो गया है। समाज की एकता के लिए ये दोनों व्यवहार अत्यन्त आवश्यक हैं। यदि रोटीव्यवहार और बेटीव्यवहार नहीं हो सकता तो समाजका एका भी नहीं हो सकता, फिर और परिस्थिति भलेही एकही होवे। भेद के तथा छूत अछूत के कारण हमारे हिन्दू धर्म में ऐसा झगडा खडा हो गया है कि जिसके कारण कोई भी सामुदाइक

काम, किसी भी प्रकार की सामूदाइक प्रगति नहीं होती । यदि होती भी हो, तो वह वहुत ही मंद गति से होती है । इस शोचनीय दशा की ओर ध्यान न देकर अव काम चल नहीं सकता । विशेषतः शिक्षित समाजको इस ओर अवश्य ही ध्यान देना होगा ।

बौद्ध धर्म ।

करीव सवा दो हजार वर्ष पहले हिन्दुस्थान में जातिभेद तथा हिंसा सीमा को पहुंची । इन दोनों दोषों को निकालकर उनके स्थान में समता तथा अहिंसा के धार्मिक गुणोंकी स्थापना करने के उद्देश्य से भगवान् बुद्ध ने वौद्ध धर्म चलाया । इससे इस धर्म में सव प्रकार के नीतिवंधनों में इन्ही दो गुणों को अग्रस्थान मिला। सव जीवोंपर आत्मवत् दृष्टि रखना उन्हे किसी भी प्रकार से दुःख न देना और सारी मनुष्य जाति में जो निसर्गतः वन्धुभाव है उसे अपने आचरण में लाना आदि सद्गुणों को ही इस धर्म में प्रधानता दी गई है । इसी लिए अल्पकालमें इस धर्मका प्रसार अधिक हुआ और जहां जहां यह धर्म पहुंचा वहां के मूल धर्म का इसने उच्छेद किया । इस धर्म में ऐसी समता है, इसी लिए इसमें छूत अछूत जैसे संकुचित भाव नजर नहीं आते । इसी लिए वुद्धजी के कुछ उपदेशों का विचार करें ।

एक समय वुद्धजी को मार का दर्शन हुआ। उन्हों नें वुद्धजी से कहा कि 'आजसे सात दिन वाद तुम्हे सारे संसार का राज्य मिलेगा । ' यह सुन वुद्धजी वोलेः–" But it is not now sovereignty that I desire. I will become Budha and make all the world shout for joy. "

"अब मुझे राज्यपदकी इच्छा नहीं है, मैं बुद्ध होऊंगा और ऐसा कार्य करूंगा जिससे सारा संसार आनंद के लिए तत्पर होगा "

कल्याणो धम्मो, अ० १५। ३

इस वाक्य से विदित होता है कि गौतम बुद्धजी की इच्छा यही थी कि 'मेरा धर्म सारे संसार के लिए है।' इस इच्छा से मालूम होता है कि किसी भी जाति के, किसी भी देश के या किसी भी रंग के लोग क्यों न हो; वे इस धर्म में आवें, और उन्हे निर्वाण पद प्राप्त हो।

सब मनुष्यों की उत्पत्ति एक ही तत्त्व से है, इससे वे सब एकसे हैं। बौद्ध धर्म उन सबको समान ही मानता है। जिस प्रकार वर्षा सब पर एकसी बरसती है, उसी प्रकार बुद्धजी सब पर एकसा प्रेमभाव रखते हैं। क्याही बडी बुद्धजी की समता है! उस महात्मा के उदार हृदय में यह भाव ही न था कि अमुक जातिके लोग उच्च और अमुक के नीच हैं। इसी प्रकार—

"Well then, we agree that the flame of to day is in a certain sense the same as the flame of yesterday; and in another sense it is different at every moment. Moreover, the flames of the same kind, illuminating with equal power the same kind of rooms, are in a certain sense the same." (41)

" Yes, Sir, " replied Kutadanta. (42)

The Blessed One continued; " Now, suppose, there is a man, who feels like you, thinks like you and acts like you, is he not the same man as you?" (43)

" Dost thou deny tnat the same logic holds good for Thyself that holds good for the things of the world! " (45)

" अच्छा, तो अब यह निश्चय हुआ कि कलकी दीपज्योति और आजकी दीपज्योति कुछ बातों में एक ही है, तथा दूसरी रीति से देखें तो प्रत्येक क्षण में वे भिन्न हैं। एक ही प्रकार की दीप-ज्योतियां, एक प्रकारसे एक ही कमरे को प्रकाशित करती हों, तो वे सब एक हैं। '

" जी हां महाराज " कूटदंतने कहा।

तदनन्तर बुद्धदेव बोले " अब ऐसी कल्पना करो कि एक मनुष्य है, जिसकी भावना, विचार तथा काम भी तुम्हारे समान हैं तो क्या वह मनुष्य तुम्हारे समान नहीं है? "

"तर्क का जो प्रमाण संसार की दूसरी वस्तुओं के लिए कामयाब होता है वही तुम्हारे लिए भी कामयाब है। क्या तिसपर भी तुम कबूल नहीं करते? " कल्याणी धम्मो अ. ५३

दीप में तेल, बत्ती, बर्तन तथा अग्नि, इतनी वस्तुएं रहतीं हैं। सब दीपों में इतने ही पदार्थ रहते हैं, इसी लिए सब दीप समान हैं। उसी प्रकार मनुष्य में शरीर, मन, बुद्धि आदि रहते हैं, वे सब मनुष्यों के लिये समान ही रहते हैं इसी लिए सब मनुष्य समान हैं। एक ही कमरे में दस दीप हों तो उन में से हर एक की जाति जिस प्रकार भिन्न नहीं होती उसी प्रकार जगत् रूप कमरेमें सब मनुष्य दीप हैं। शरीर रूप बर्तन में मन रूप तेल छोडकर उसमें बुद्धिरूप ज्योति सिलगाई है। इस लिए सब मनुष्यों को समान समझो।

"Now, suppose, 'added the Blessed One, " that a man should come hither to the bank of the river, and, having some business on the other side, should want to cross, do you suppose that if he were to invoke the other bank of the river to come over to him on his side, the bank would come on account of his praying ? (18)

Yet this is the way of the Brahmanas. They omit the Practice of these qualities which really make a man a Brahman, and say, ' Indra, we call upon you, Soma, we call upon you; Varuna, we call upon you; Brahma, we call upon you. " Verily, it is not possible that these Brahmans, on account of their invocations prayers and praises, should after death, be united with Brahma "

" अब कल्पना करो कि एक मनुष्य नदी के किनारे गया। उसे किसी काम के लिए उस पार जाना है। तब वह यदि प्रार्थना करे कि, हे किनारा, तू मेरी ओर आ, तो क्या वह उस पार का किनारा उसकी प्रार्थना के कारण उसके पास आ जावेगा? बस, इसी प्रकार के ब्राह्मणों के मार्ग हैं। वे उन गुणों को नहीं अपनाते जिनके कारण मनुष्य ब्राह्मण बनता है। किन्तु वे कहते हैं, हे इन्द्र, मैं तेरी प्रार्थना करता हूं; हे सोम, मैं तेरी प्रार्थना स्तुति करता हूं; हे वरुण, मैं तुम्हे बुलाता हूं; हे ब्रह्म। मैं तुम्हारे गुण गाता हूं। ' परन्तु यह कहना व्यर्थ है कि ऐसा करने से मरने के पश्चात् उन्हे ब्रह्म की प्राप्ति होगी, या वे ब्रह्म में लीन हो जावेंगे "

कल्याणो धम्मो अ. ४९

उपर्युक्त वचन में कहा है कि वही मनुष्य ब्राह्मण वन सकता है जिसमें कोई खास गुण हों। इससे स्पष्ट विदित होगा कि भगवान् बुद्ध जन्मपर से ब्राह्मणत्व मानने के पक्षपाती नहीं थे। वरन् वे गुणतः ब्राह्मणत्व को मानते थे। पहले महाभारतका एक वचन आ गया है जिस में कहा है कि किसी भी जाति का मनुष्य क्यों न हो उसमें यदि वे विशेष गुण विद्यमान हैं तो उसे ब्राह्मण समझना चाहिए। बराबर इसी अर्थ का यह भगवान् बुद्ध का वचन है। यह स्पष्ट है कि जो लोग गुण कर्मों से ऊंच नीच पहिचानते हैं वे किसी भी व्यक्ति को उसकी जाति के कारण अछूत न समझेंगे। और भी देखिए—

आगे लिखे लेखांश से ज्ञात होगा कि भगवान् बुद्ध की अन्त्यज-- बहिष्कृत जाति या बहिर्जाति (Out-cast) के विषय में क्या धारणा थी —

"When Bhagawant dwelt at Shrawasti in the jeta-vana, he went out with his alms-bowl to beg for food and approached the house of a Brahman priest while the fire of an offering was blazing upon an altar. And the priest said-

'Stay there, O Shoveling, stay there, O Wretched Shramana, thou art an outcast.'

The Blessed one replied: "Who is an out-cast ?" (2)

"An out-cast is the man who is angry and bears hatred: the man who is wicked and hypocritical, he who embraces error and is full of deceit. (3)

Whosoever is a provoker and is avaricious, has sinful desires, is envious, wicked, shameless and without fear to commit sins, let him be known as an out-cast." Not by birth does one become an out-cast, not by birth does one become a Brahman; by deeds one becomes an out-cast."

(एक समय भगवान् बुद्धदेव जब कि वे श्रावस्ती में रहते थे, हाथ में भिक्षा-पात्र ले एक ब्राह्मण के घर भीख मांगने गए। उस समय ब्राह्मणकी घर की वेदीपर हाल ही में हवन हुआ था, इससे अग्नि जलती थी। भगवान् बुद्ध को देखकर ब्राह्मण बोला-' ऐ मुंड? ठहरो। ऐ भिखारी श्रमण? दूर खड़े रहो। तुम वहिष्कृत हो। " यह सुनकर बुद्धदेव बोले; -वहिष्कृत कौन है ? जो क्रोधी, द्वेष करनेवाला, दुराचारी, ढोंग करनेवाला, प्रमादी, ठगने-वाला, दुःख देनेवाला, स्वार्थी, पातकी, निर्लज्ज हो, वही वहिष्कृत है। जन्मसे कोई भी वहिष्कृत नहीं रहता और जन्म से कोई भी ब्राह्मण नहीं है। मनुष्य अपने आचरण ही से वहिष्कृत होता है तथा अपने कामों से ब्राह्मण होता है।)

—कल्याणो धम्मो. अ० ७५

इसमें स्पष्ट रीतिसे कहा है कि जन्मतः कोई भी अछूत नहीं है। वहिष्कृत या अछूत जाति कोई हैही नहीं। प्रत्येक मनुष्य सदा-चार ही से उच्च और दुराचार ही से नीच बनता है। इससे स्पष्ट होता है कि बुद्धदेव को जाति भेद, अत्यंजों का वहिष्कार आदि धार्मिक अत्याचार पसंद न थे। इसी कारण बुद्धजीने अपना धर्म संसार में फैलाने की चेष्टा की। ब्राह्मण के धर्म में जाति-भेद और छूत अछूत है इस लिए उन्होंने अपना धर्म संसार में फैलाने की चेष्टा नहीं की, और अब तक यह दोष इस धर्ममें

रहेगा तब तक हिन्दू धर्म के लोग दूसरों को अपने में शामिल नहीं कर सकते। अस्तु। बुद्धदेव सदाचार को कैसा महत्व देते थे निम्न लिखित वचन से स्पष्ट होता है—

If any man, whether he be learned or not, considers himself so great, as to despise other men, he is like a blind man holding a candle, blind himself, he illumines others." (धम्मपद अ० ३)

"To repeat a thousand words without understanding, what profit is there in this? But to understand one truth and hearing it to act accordingly, this is to find deliverance.' (धम्मपद अ० १६)

" But the disease of all diseases, than which none is worse, is ignorance. (धम्मपद अ० २६)

(खुद अज्ञानी रहते हुए जो दूसरों को तुच्छ समझता है और आप अपने को उच्च समझता है वह दिया लेकर चलनेवाले अंधे के समान है। अर्थात खुद अंधा होते हुए भी दूसरों को रास्ता बतलाने की घमंड रखता है। सैकडों ग्रंथ मुखाग्र हों तब भी उससे लाभ कुछ नहीं है। जितना सत्यज्ञान समझमें आवेगा उस के समान यदि आचरण हो तभी मुक्ति प्राप्त होगी। अज्ञान सब रोगोंमें बडा रोग है)

उपर्युक्त उद्गार उस समय के रटंत विद्या के पक्षपाती ब्राह्मणों के संबंध में कहे गए हैं। इससे स्पष्ट होता है कि बुद्धदेव के विचार से उन नीच जाति के लोगों की योग्यता अधिक थी, जिनका ज्ञान ग्रन्थ रटनेवाले ब्राह्मणों से कम होने पर भी उसी ज्ञान के अनुसार उनका आचरण था। निम्न लिखित लेखांश से

विदित होगा कि उनके श्रमण तथा भिक्षुओंके चुनाव का तत्त्व जाति नहीं था किन्तु गुण - कर्म था। देखिए-

"Who is Shramana? Not he who is Shaven per force, who speaks untruth, and covets possession, or who is slave of desire like the rest of men: but he who is able to put an end to every wicked desire, to silence every personal preference, to quiet his mind and to put an end to thought. This man is called a Shramana. And who is called a Bhikshu? Not he who at stated times begs his food, not he who walks unrighteously (heretically), but hopes to be considered a disciple, desiring to establish a character (as a religious person), and that is all: but he who gives up every cause (karma) of guilt and lives contently and purely, who by wisdom is able to crush every evil, this man is a true Bhikshu."

" जो सिर मुडाता है और दुराचार से रहता है, वह श्रमण नहीं, किन्तु श्रमण उनको समझना चाहिए जो मन की दुष्ट भावनाओं को तथा स्वार्थकी इच्छा को त्याग देता है और शुद्ध आचरण से रहता है। इसी प्रकार भिक्षू वह नहीं जो नियमित समय पर भीख मांगता है और सब प्रकार के दुष्ट कर्म करता है, किन्तु वह जो किसी भी प्रकार का बुरा कर्म नहीं करता। "

इससे साफ रीतिसे मालूम हो जाता है कि भगवान् गौतम बुद्ध को जाति के कारण मनुष्यों को अपनाना पसंद न था बल्कि गुणों के कारण अपनानाहि पसंद था। जिसके धर्म में जातिभेद ही नहीं है उसके धर्म में छूत अछूत हो ही नहीं सकती।

वर्तमान समय के बौद्ध धर्मावलम्बी लोग हिन्दुओं के सहवास के कारण जातिभेद के बंधनों को मानते हैं और किसी किसी को अछूत समझकर दूर भी कर देते हैं परन्तु इस प्रकार का उपदेश भगवान् बुद्धने किसी भी स्थान में नहीं किया। भगवान् बुद्ध ने अपनी शुद्ध वाणी से समता का ही उपदेश किया, और वह लोगोंने कुछ शताब्दियों तक माना भी। परन्तु आगे चलकर समयने पलटा खाया और पहले की प्रथाने अधिक जोर पकडा। इससे अंत्यज हमेशाके लिए अछूत समझे गए और आज कई शताब्दियों से उन्हे अछूत ही रहना आवश्यक हुआ है। भगवान् बुद्धने एक स्थान में कहा है

"Where there is much suffering there is also great bliss.

(जहां कहीं दुःख अधिक हो जाता है वहां सुख भी अधिक होता है।) उनकी इस दैवी वाणीके अनुसार अन्त्यज आदि अछूत तथा वहिष्कृत जातियों ने जो हजारों सालों से दुःख भोगा है उसके बदले में उन्हे मिलनेवाला सुख जल्द मिले और उनके द्वारा सामाजिक उच्च कर्तव्य होवें। यह हमारी इच्छा है। यहां हम बौद्ध धर्म का विचार खतम करते हैं।

भाग १० वां।

हिन्दू धर्म के भिन्न भिन्न धर्मपंथों की दृष्टिसे

छूत अछूत का विचार।

हम मूल सिद्धान्त की दृष्टिसे भिन्न भिन्न धर्मों का विचार कर चुके। बौद्ध, धर्म की परम पवित्र और व्यापक दृष्टिसे भी विचार हो, चुका। अब हम छूत-अछूत तथा भेद- अभेद का विचार उन धर्मपंथों की दृष्टिसे करेंगे, जिनको भिन्न भिन्न समय पर भिन्न भिन्न आचार्योंने चलाया था।

(१) अद्वैत पंथ- इस पंथ को श्रीमत् शंकराचार्यजीने चलाया। जिसमें द्वैत बिलकुल नहीं वही अद्वैत है। इसमें द्वैत, भेद, उच्च-नीच भाव आदि का पूर्णतया अभाव है। इस मत का सिद्धांत है कि सृष्टि मिथ्या है, एक परब्रह्म ही नाना रूपों में दिखने लगा। जब सृष्टि ही मिथ्या हुई तब उसमें रहनेवाली जातिभेद तथा छूत अछूत की कल्पनाएं भी भ्रममूलक ही होनी चाहिए। इसी लिए श्रीशंकराचार्यजी ने कहा है कि, 'विप्रोऽयं श्वपचोऽयं इत्यपि महान् कोऽयं विभेदभ्रमः।'

श्री शंकराचार्य जी का अध्ययन समाप्त होनेपर तथा धर्म का प्रसार करने के पूर्व—एक कथन है कि—भगवान् शंकरजीने चांडालरूप धारण कर शंकराचार्य जी को उपदेश दिया। शंकराचार्य स्नान करके घर लौटकर आ रहे थे। इतने में उस चांडालने उन्हे धक्का दिया, तब उन्होंने उस चांडालसे पूछा कि 'तुमने मुझे स्पर्श कर अपवित्र क्यों किया?' तब उनका उस चांडाल से बहुत देर तक वार्तालाप होता रहा। उसका भाव यह है कि सब कुछ एकही ब्रह्म से व्याप्त है इसलिए न तो कोई चांडाल

ही है और न कोई ब्राह्मण। इस प्रकार अद्वैत का उपदेश कर भगवान शंकर गुप्त हो गए। इस कथा का भी तात्पर्य यही है कि समता का भाव मानो।'

श्रीशंकराचार्य के पहले हिन्दुस्थानभर में बौद्ध तथा जैन मत फैला हुआ था। और वैदिक धर्म करीव करीव लुप्तसा हो गया था। आचार्यजी ने केवल उपनिषद् धर्म का ही प्रचार किया होगा इतना ही नहीं उन्होंने कई बौद्ध तथा जैन धर्म के लोगों की शुद्धि की और उन्हे हिन्दु बनाया। शैव, वैष्णव, सौर, शाक्त, गाणपत्य, भैरव, जैन, बौद्ध आदि सब मतों के लोगों को श्रीशंकराचार्य ने अपने धर्म की दीक्षा दी और उन्हे अपने मतके अनुयायियों में सम्मिलित किया। बौद्ध धर्म में जातिभेद तो थाही नहीं। उन्होंने सबको मिला डाला था। इस प्रकार की खिचडी को भी श्रीशंकराचार्यने शुद्ध कर अपनाया। इससे स्पष्ट है कि उस समय पतित मनुष्य को भी शुद्ध होने का रास्ता खुला था। जो लोग पतित थे वे जब तक पतित हैं तब तक भलेही व्यवहार के लिए अयोग्य रहे हों, परन्तु प्रायश्चित्त से शुद्ध हो जाने पर वे व्यवहार योग्य माने जाते थे। आगे चलकर जो आचार्य हुए उनके विषय में इस बातका कहीं भी नहीं पता चलता कि उन्होंने इस प्रकार किसी की शुद्धि की हो।

श्रीशंकराचार्य का मत गीता के उपदेश से मिलता था। उनका उपदेश था कि सब लोगों के प्रति समभाव रखना चाहिए-

विद्या विनयसंपन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।
शुनि चैव श्वपाके च पंडिताः समदर्शिनः॥१८॥
इहैव तैर्जितः सर्गो येषां साम्ये स्थितं मनः।
निर्दोषं हि समं ब्रह्म तस्माद् ब्रह्मणि ते स्थिताः॥१९॥

गीता, अ०५

अर्थात् ' ब्राह्मण तथा चांडाल दोनों को सम दृष्टिसे देखो । जो लोग इस प्रकार समताका आचरण करते हैं उन्हे इसी लोक में स्वर्ग मिलता है। ' यह गीता माता का उपदेश ही वे बताते थे। परन्तु उन्होंने यह निश्चित किया कि - आचरण तथा सत्य के दो भेद हैं, एक व्यावहारिक और दूसरा पारमार्थिक । समता पारमार्थिक दशा की बात है और भेद अभेद व्यवहार की बात है। इसीसे व्यवहार में भेद अभेद की मात्रा बढती गई और गीता का समता का उपदेश एक तरफ रखा रहा ।

ऐसा देखने में नहीं आता कि मध्वाचार्य तथा वल्लभाचार्य ने जातिभेद तथा छूत अछूत को मिटाने की कोई खास कोशिश की हो; विशिष्ट अद्वैत पंथ-विशिष्ट अद्वैत के प्रवर्तक रामानुजाचार्यने इस विषय में बहुत कुछ कार्य कर डाला । यदि किसीने समता के भाव को बढाने का उपदेश जोर शोर से किया है तो वह रामानुजाचार्यने किया है । जो समता शंकराचार्यने केवल पारमार्थिक दशामें ही रखी थी उसे ये महाशय व्यवहार में ले आए । यद्यपि उनके वर्तमान समय के अनुयायियों में यह भेदभाव कूट कूट कर भरा है, तब भी वह इन आचार्य के उपदेशों में ही क्या, आचरण में भी नहीं पाया जाता यद्यपि बुद्धजी का अहिंसा का उपदेश है तबभी उनके अनुयायी चीनी लोग जिस प्रकार मांसभक्षक हुए उसी प्रकार रामानुजाचार्य के अनुयायी भी भेद अभेद के पक्षपाती बने हैं। समानता का भाव तो रामानुजाचार्य के छुटपन के जीवन में भी झलकता है।

रामानुजजीने कांचीपूर्ण नामक अब्राह्मण को गुरू माना । एक दिन उन्होंने अपने गुरु को भोजन के लिए निमन्त्रण दिया । रामानुजजी सोचते थे कि 'मैं उनकी पंगत में भोजन करूंगा तथा उन का उच्छिष्ट भी भक्षण करूंगा।' यह विचार गुरूजी को मालूम

होगया। फिर निश्चित किये हुए दिन गुरू कांचीपूर्ण रामानुज के घरपर ऐसे समय पहुंचे जब कि रामानुज घर में नहीं थे। और भोजन करके चले गए। रामानुज की पत्नि पुरानी प्रथा का अनुकरण करनेवाली स्त्री थी। उसे इस अब्राह्मण का अपने घरमें भोजन करना पसंद न हुआ। इससे उसने सब मकान लिपवा पुतवा डाला। और वह खुद स्नान करके अपने काम में लग गई। इतने ही में रामानुज घर लौटे और उन्होंने अपनी पत्नी से पूछा 'यह क्या?' तब पत्नी बोलीः-

रामानुज की पत्नी -"महाराज, जिस शात्ताद (अब्राह्मण) को आपने भोजन के लिए बुलाया था वह भोजन करने आया था। वह नीच जाति का था इससे जिस स्थानपर उसने भोजन किया है उसे मैंने शुद्ध किया है और मैं भी स्नान करके शुद्ध हुई हूं।"

यह सुन रामानुज जी को बहुत बुरा लगा और वे पत्नी से बोले-"ऐ मूर्ख! तूंने यह क्या किया? तूंने मेरी सब अभिलाषाओं को मिट्टी में मिलाया!" (रामानुज चरित्र भाग १०)। रामानुज जीका मत था कि जातिभेद को मानना ही हो तो मानो परन्तु ऊंचे दर्जे को पहुंचे हुए साधुसंतों के विषय में जातिभेद नहीं मानना चाहिए। क्यों कि-

प्रत्यक्षितात्मनाथानां नैषां चिन्त्यं कुलादिकम्॥

भारद्वाज संहिता० अ० १।४४

अर्थात् 'जिन्हे आत्मसाक्षात्कार हुआ है उनके कुल की ओर ध्यान न देना चाहिए।' यह संहिता का वचन है। इसी के अनुसार वे चलना चाहते थे। परन्तु पत्नीसे लेकर सारी जनता उनके विरुद्ध थी इससे उनकी इच्छा सफल होने में अनेक बाधाएं उपस्थित होती थीं। आगे चलकर किसी समय रामानुज अपने

गुरु कांचीपूर्ण को अपने घर ले आए। तब उनकी स्त्री के शुद्ध अशुद्ध एवं पवित्रता अपवित्रता के विचारों के कारण वह गुरु-पत्नीसे लढ पडती। एक बार इन दोनों स्त्रियों का कुए पर इसी संबंध में झगडा हुआ। और वह बहुत बढ गया। यह देख कांची-पूर्ण अपनी पत्नीसहित स्थानत्याग कर वहां से चल दिए। जब रामानुज घर लौटे तो उन्हे पडोसियों ने सब हाल सुनाया। तब वे सोचने लगे कि इस सब झगडे का मूल है मेरी स्त्री। इसलिए उसे ही त्याग दूं। उसे सुधारने के लिए कोई उपाय न था इससे उसे खाने पीने तथा वस्त्रादि के लिए खर्चा देकर बिदा किया; तदनंतर वे संन्यासी हुए।

उपर्युक्त विचार संन्यास दीक्षा ग्रहण करने के पहिले के हैं। संन्यासी बनने पर जब वे उपदेश करने लगे, तब उनका उपदेश तथा विजय कुंभकोणम् में हुआ। तब वे तिरुपल्लि (तिरु नगरी) में पहुंचे। वहां एक चांडाल स्त्री से वादविवाद हुआ। उन्हे मालूम हुआ कि उस चांडाल स्त्री की उन्नति बहुत हुई है। तब सब लोगों के समक्ष वे बोले--' हे चांडाल स्त्री! मुझे क्षमा कर, मेरी अपेक्षा तू अधिक पवित्र है। ' इतना कहकर उस स्त्री को उन्होंने अपने धर्म की दीक्षा तुरन्त दी। इतना ही नहीं उस चांडाल स्त्री की मूर्ति बनवाकर उसकी स्थापना एक मंदिर में की। (इस समानता के कार्य का स्मारक बनाने के लिए ही उसे देवताओं में स्थान दिया।) उसकी मूर्ति अब भी मन्दिर में बत-लाई जाति है। और सब भक्त लोग उसकी पूजा भक्तिभाव से करते हैं।

(रामानुज चरित्र भाग ४२)

त्रिचनापल्ली के पास उरय्युर नामका एक ग्राम है। वहां धनु-र्दास नामका एक शूद्र रहता था। उसे उसकी स्त्रीसहित पंच-

संस्कार कर श्रीरामानुजाचार्यने अपना शिष्य बनाया। इतना ही नहीं, वरन् वे सदैव उसके साथ बराबरी का बर्ताव करते थे। वे नदी में स्नान करने जाते थे तब दाशरथी नामक ब्राह्मण शिष्य के कंधे पर हाथ रखते थे, पर स्नान करके लौटते समय इस धनुर्दास के कंधे पर हाथ रखते थे। कुछ लोगोंने उनसे प्रश्न किया कि स्नान करने पर आप इस शूद्र को स्पर्श क्यों करते हैं? तब वे बोलेः-

विद्यामदो धनमदस्तृतीयोऽभिजनो मदः ॥
एते मंदावलिप्तानामेत एव सतां दमाः ॥

अर्थात् ' मूर्ख लोग विद्या, धन तथा जातिका गर्व करते हैं। परन्तु ज्ञाता लोग इस गर्व का दमन करते हैं। " इसके बाद वे बोले-' यह धनुर्दास तुम ब्राह्मणों से भी श्रेष्ठ है। इसी लिए स्नान के बाद भी मैं उसे स्पर्श करता हूं!! " रामानुजजी की समता इस प्रकार की थी।

(रामानुज चरित्र भाग २९)

यादव गिरीपर नारायण का मंदिर बनवाकर उसमें नारायण की स्थिर प्रतिमा की स्थापना रामानुजाचार्य ने ही की: परन्तु उनके सामने यह प्रश्न उपस्थित हुआ की उत्सव-विग्रह का प्रबन्ध किस प्रकार होवे। उन्हे पता चला कि दिल्ली का तुर्क बादशाह (मालूम होता है कि श्रीरामानुजाचार्य के समय जो मुगल सरदार दिल्लीमें था उसके लिए चरित्र लेखक ने गलती से बादशाह कहा होगा।) लूट के साथ उत्सव - विग्रह ले गया। वह लाने के लिए रामानुजाचार्य दिल्ली गए। बादशाह की लडकी उस पंच-धातु-मय मूर्ति को बहुत चाहती थी। इससे वह विग्रह देना नहीं चाहती थी। आगे चलकर यह निश्चय हुआ कि रामानुजाचार्य मूर्ति के साथ लडकी को भी ले जावें। बादशाह ने

बहुत धन, लडकी और मूर्ति की विदा की। उस मूर्तिकी स्थापना आचार्य जी ने यादव-गिरीपर की। उस बादशाह के लडकी को रामानुजाचार्य ने मूर्ति की पत्नी कहा और उसे अछूत नहीं माना। इस मंदिर में धेड, चमार, चांडाल आदि सब अछूत जाति के लोग जा सकते थे। मंदिर के निकट एक तालाव है उसमें स्नान करने तथा मंदिरमें दर्शन करने की इजाजत सब अछूत जातियों को थी। [आज कल यह इजाजत केवल उत्सव के दिन ही दी जाती है, परन्तु इससे आचार्यजी का उद्देश कैसी उदारताका तथा कैसी समानता का था इस का पता अवश्य चलता है।] आचार्यजी ने अपने पंथ के पांच संस्कारों का अधिकार चमार, चांडाल आदि अछूतों को भी दिया था। प्रवंध किया गया था कि इन लोगों को धर्म की शिक्षा दी जावे। इससे वाचकों को स्पष्ट मालूम होगा कि रामानुजाचार्य की शिक्षा किस प्रकार समानता की थी।

(रामानुजचरित भाग २१)

मद्रास के 'हिन्दू' समाचार पत्र ने ता० ५ फरवरी १९०६ की संख्यामें रामानुजाचार्य के सम्बन्ध में जो कुछ कहा है वह विचारणीय है:--

"........Nothing is of greater historical interest than the word TIRUKKULATAR... when Shri Ramanujacharya, the im-mortal founder of vaishnava sect, went to Melkote in the mysore province. the Pariahs made themselves so useful to that sage that he felt for their hard lot. To elevate them socially he gave them the name of TIRUKKULATAR, which means people of high or noble descent. His

great aim was to abolish the word Pariah and thus to put a stop to the degradation of a section of the people of their country. He also awarded to them the rare and valued privilelge of visting the temple at Melkote, three days in the year. thus the emancipation of the pariah commenced long ago, and if it has not been yet accomplished, the cause is not solely the absence of consideration for the class on the part of some of the most illustrious founders of religious sects in India. Though the present day followers of shri Ramanujachariar form probably the most exclusive among the Brahman community still the fact remains that the founder of the sect laboured for the elevation of the depressed and despised castes....The hallowed name of TIRUKKULATAR carries us back to those good old days when the practice and the preaching of religions meant really the elevation of men and the greatest of saints considered it a part of their duty to minister to the religious cravings of the lowest class of the people" (*Hindu.* 5 Feb. 1906)

श्री रामानुजाचार्य जी को परया, पंचम, धेड, चमार, अंत्यज आदि लोगोने मेलकोट प्रान्त में इस कदर मदद दी की आचार्यजी का ध्यान इन लोगों की अवनत दशा की ओर आकृष्ट हुआ। इन बहिष्कृत लोगों के उत्थान के हेतु आचार्यजी ने इन्हे "तिरुक्कुलतार" नाम दिया। इस शब्द का अर्थ है

"श्रेष्ठजाति के लोग ।" इसमें आचार्यजी का एकमात्र लक्ष्य यह था कि उनके परया, पंचम आदि नाम यदि लुप्त हों तो उनके उत्थान में सहज ही मदद पहुंचेगी । वे केवल श्रेष्ठत्व दर्सानेवाला नाम देकर ही नहीं रुके बल्कि उन्होंने इन बहिष्कृत लोगों को श्रीरंगं, मेलकोट, वेल्लूर आदि स्थानों के मंदिरों में जानेकी इजाजत भी दी थी, और मंदिर के निकटस्थ तालाव में स्नान करने की भी इजाजत दी थी। आजकल इन लोगों को साल में तीन दिन इस प्रकारकी इजाजत है। इन तीन दिनोंमें अत्यन्त शुद्ध एवं पवित्र ब्राह्मण भी इन लोगों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर स्नान करते हुए तथा दर्शन करते हुए नजर आते हैं । इस प्रकार आचार्यजी की समता का अवशेष आज की अवनत दशामें भी मौजूद है । इससे सहज ही में मालूम होगा कि प्रारम्भ में उस महात्माने किस प्रकार इन बहिष्कृतों की उन्नति का प्रयत्न किया था ।

श्रीरामानुजाचार्य ने इन अंत्यजोंको वैष्णव धर्म के पांच संस्कार का अधिकार दिया था, और प्रबंध किया था कि इन को वैष्णव धर्म की शिक्षा मिले । धर्म, आचार नाम तथा देवालय में प्रवेश मिलना इतने प्रकार से उन बहिष्कृतों की उन्नति का प्रबंध था । उन्हीं का प्रबंध था कि किसी भी जाति का साधु मंदिर में जा सके ।

न शूद्रा भगवद्भक्ता विप्रा भागवताः स्मृताः ॥

भारत.

'जो ईश्वर के भक्त हैं वे ही ब्राह्मण हैं । जो ईश्वर के भक्त हैं उन्हें शूद्र नहीं कहना चाहिए ' । ठीक इस महाभारत के वचन के अनुसार ही रामानुजजी का वर्ताव था ।

इस समानता को-अर्थात् वैष्णव धर्म को-फैलाने के लिए आचार्यजीने सातसो मठों की स्थापना की और नवासी गुरूकी गद्दियों पर गुरू की स्थापना की। उनमें से आज भी कांजीवर, श्रीरंग, रामेश्वर, तोलाद्रि तथा अहोवलं आदि स्थानोंमें विद्यमान हैं। परन्तु इन लोगोंद्वारा आचार्य जी का चलाया अंत्यजों के उद्धारका कार्य बिलकुल नहीं होता। अब तो यह हाल है कि अंत्यजों को सालके तीन दिन तालाब का स्नान तथा मंदिर में दर्शन करने मिलता है, यही अहोभाग्य समझना चाहिए? रामानुजाचार्य जी के कार्य का प्रभाव कैसा बलवत् था इसकी प्रतीति तब होती है जब हम देखते हैं कि वेही लोग जो मानते हैं कि दूसरों की दृष्टिपात से ही अपना भोजन अपवित्र होता है, सालके तीन दिन धेड. चमार आदिके साथ कंधे से कंधा लगाकर बिना हिच किचाए एक जगह स्नान करते हैं। विष्णू भगवान की भक्ति से सबकी उन्नति एकसी होती है। बारहवीं शताब्दि में इस तत्त्व को श्रीरामानुजाचार्य ही ने पहिली बार चलाया। दक्षिण हिन्दुस्थान में सब जगह इसका प्रचार हुआ। उन्होंने तो जैन तथा बौद्ध धर्म के जिनमें कि जातियां होतीं ही नहीं, लोगों तक को अपने पंथ में मिला लिया। धेडों की शुद्धि करने के लिए तथा उनकी उन्नति के लिए खास उपाय निकालकर उनका उपयोग जारी रखा। इन सब बातों का विचार करते हुए खुले शब्दों में कह सकते हैं कि उनका विचार यह कदापि नहीं था किसी खास जाति पर छूत अछूत का दोष लगाया जावे,

आचार्यजीने वैष्णव पंथ निकाला नहीं किन्तु उसे पुनरपि चालना दी। अति प्राचीन कालमें अछूत जाति के एक प्रसिद्ध कविने जिसका नाम तिलुवेल्लुवर था, कुरल नामका एक ग्रन्थ लिखा था। यह ग्रन्थ अब भी पवित्र समझा जाता है। इस वैष्णव पंथ के बारा महंत

प्रसिद्ध हैं । उनमें से श्रीमती अंदालम्मा जी का जन्म किससे हुआ था यह बात उनके पालकों को भी मालूम नहीं थी। परन्तु आगे चलकर वे बड़ी साध्वी स्त्री हुई और सब को वंदनीय हुई। महंत तिरुमाळिसै-अल्लवर (आल्वार) का लालन-पालन एक शूद्रने ही किया था । इनका लड़कपन शूद्र के ही घर हुआ । तिसपर भी सब लोगों ने उन्हें खुल्लम खुल्ला वैष्णव धर्म में आने दिया महंत तिरु-प्पान-अल्वार (आल्वार) अंत्यज कुल में उत्पन्न हुए थे । वैसेही तिरु-मंगाई-आल्वार भी शूद्र थे । इस प्रकार वैष्णव पंथ में हीन कुलमें उत्पन्न हुए लोगों की भरमार थी । श्रीरामानुजाचार्यजी ने इसी धर्म को आगे चलाया । और अतुल बुद्धिबल से उसे निश्चित पद्धति में जमाया ।

चक्रांकित के ग्रन्थ में कहा है कि श्रीरामानुजाचार्य के गुरु यमनाचार्य, यमनाचार्य के गुरु मुनिवाहन तथा उनके गुरु शठ-गोपाचार्य, इन लोगों के कुल हीन थे। भक्तमाला ग्रन्थ में शठगोपा-चार्य के विषय में इस प्रकार कहा है कि: " विक्रीय शूर्पं विचचार योगी । ' अर्थात् शूर्पविक्रय करनेवाला यह डोम जातिका योगी था । मुनिवाहन चांडाल जातिमें ही उत्पन्न हुआ था । कई लोगोंने यमुनाचार्य को यमनाचार्य या यवनाचार्य लिखा है । इनमें यमुना-चार्य तथा शठगोपाचार्य के विषय में बहुत भिन्नमत हैं । तब भी मुनिवाहन के विषय में सबका एक मत है। पं. गोविंदाचार्य जी के बनाए आलवार-संत-चरित्र (पृष्ठ १३८) में इनका चरित्र नौवां है । वे इनको पंचम कुलोत्पन्न ही समझते हैं । ये बड़े भगव-द्भक्त थे। इनकी जाति के लोगों को इजाजत न थी कि वे श्रीरंग के प्रसिद्ध मंदिर में प्रवेश करें । परन्तु भक्तिरस में रंगे हुए ये साधु जब आगे बढ़ कर प्रेमसे भजन करने लगे तब यह बात भी सारंगमुनि नामक ब्राह्मण से न देखी गई । उन्होंने उस भक्त को

पत्थर मारकर जगाया, और उसकी जातिके योग्य स्थान में जाकर खड़े रहने को कहा। तब भगवान् श्रीरंग का उस ब्राम्हण को दृष्टान्त हुआ कि "तूने मेरे चांडाल कुलोत्पन्न भक्त का आज अपमान किया है। इसका प्रायश्चित यह कि तू उसकी शरण ले और उसे कंधे पर उठा ले और उसे मेरे मंदिर में ले आ।" जब यह दृष्टान्त हुआ तब ब्राह्मण को सुध्र हुई और उस भक्त को वह अपने कंधेपर श्रीरंग के मंदिर में ले आया। वहां सब ब्राह्मणों-ने इसका आदर किया। इसी लिए उसे मुनिवाहन या योगी-वाहन कहते है। इसका असली नाम तिरु-प्पान आल्वार था। यह हाल इस स्थान में बतलानेका उद्देश यह कि श्रीरामानुजका वैष्णव संप्रदाय परम्परा से अंत्यजों के उद्धार के अनुकूल ही था। इस पर वैष्णव पंथ की उदारता का अच्छा परिणाम हुआ। इसी लिए वे उपर्युक्त उदारता से वर्तांव कर सके।

(३) रामानंद- ये आचार्य श्रीरामानुजाचार्य जी के पंथके पांचवें आचार्य हैं। तेरहवीं शताब्दि के अन्तमें अथवा चौदहवीं के आरम्भ में इन्होंने वैष्णव धर्म को भारतवर्ष के राष्ट्रीयधर्म का स्वरूप दिया। यद्यपि रामानंद जी का मठ बनारस में था तब भी वे चारों ओर घूमे और इस प्रकार घूमकर उन्होंने वैष्णव धर्म का प्रचार किया।

इनके मुख्य शिष्यों में से बारह हीन जाति के लोगों से चुने गए थे। उनमें से एक चमार, दूसरा नाऊ, तीसरा-जो कि अच्छा नाम पाया कुष्ठ था। इनके शिष्यों की नामावली देखें तो पता चलेगा कि इनके पास सब जातियों का संग्रह है। इनके मतमें सब जातियों तथा उपजातियोंके लोग आ सकते थे।

At the end of the 13 th century A. D. according o same authorities, or at the end of the 14 th

century, according to others the great reformation which made Vishnu-worship a national religion of India, took place. Ramananda stands fifth in the apostolic succession from Ramanuja, and spread his doctrine throughout northern India. He had his head quarters in a monastry at Benares, but he wandered from place to place; preaching the one Good under the name of Vishnu and choosing twelve disciples, not from the priest or noble, but among the despised classes. One of them was a leather dresser, another a barbr and the most distingished of all was the reputed son of a weaver. This list shows that every caste found free entrance into the new creed. (Imperial gazetteer of India, vol. VI page 217).

इससे मालूम होगा कि उस समय इस पंथमें छूत अछूत मानने की प्रथा नहीं थी। ग्यारहवीं शताब्दि के उत्तरार्ध में तथा बारहवीं शताब्दि के पूर्वार्ध में वैष्णव धर्मको पुनः श्रीरामानुजाचार्यजीने जीवन दिया। इसी धर्म को रामानंदजीके समयमें राष्ट्रीयत्व प्राप्त हुआ इस समय धेड, चमार, कुष्टा आदि हीन जाति के लोगभी अच्छी योग्यता को पहुंचे थे। यदि इनकी यह धारणा होती कि अंत्यज सदाके लिए बहिष्कृत तथा अछूत रहें तो वे उन्हे 'तिरुक्कुलतार' (उच्च कुलोत्पन्न लोग) नाम कदापि न देते, और न वे उन्हे अपने शिष्य ही बनाते। तब मंदिरों जैसे स्थानोंमें खुली रीतिसे प्रवेश करना तथा सार्वजनिक तालावों में स्नान करना — और वह भी ब्राह्मणों के साथ-तो असम्भव ही था। इन बातोंसे स्पष्ट है कि इन आचार्यजीने जिस वैष्णव धर्मका फिरसे प्रचार किया वह अतीव

उदार धर्म था और उसमें ऐसे लोग कोई नहीं थे जो अछूत समझे जाते हों।

(४) कबीर – रामानंदजीके बारह मुख्य शिष्य थे। उनमें से कबीर एक थे। इन्होंने बंगालभर में वैष्णव पंथ को फैलाया। जिस मार्गसे रामानंदजीने हिन्दुओंकी संपूर्ण जातियों में एकता लाने की चेष्टा की उसी मार्गसे कबीर ने हिन्दु – मुसलमानोंमें एकता बढानेकी कोशिश की। उनके पंथ में जातिभेद को तनिक भी स्थान न था, तब छूत अछूत का विचार उसमें किस प्रकार हो सकता है ? जिस महापुरुष ने हिन्दु – मुसलमानोंको एकही धर्मके बंधनसे बांधने की चेष्टा की उस साधु पुरुष कबीर की उदार बुद्धिमें अंत्यजों के प्रति अनुदार विचार किस प्रकार रह सकते हैं? यह बात कदापि संभव नहीं है। उनका मत यह था कि सदाचार, तथा परमेश्वर के प्रति निष्ठा ये दो बातें जिनके पास होंगी वे सब पूज्य ही हैं। और यही जीवन का ध्येय है। इनके मतमें जाति विशिष्ट छूत अछूत का भेद नहीं था।

Kabir (1340-1420) one of the twelve disciples of Ramananda, carried his doctrine throughout Beubgal, as his master had lauonred to gather to-gether all castes of the Hindus into one common faith, so Kabir, seeing that the Hindus were no loager the whole inhabitants of India, tried about the beginning of the 15 th century to build up a religion that sho. uld embrace Hindu and Mohamedan alike. He rejected castes, denounced image-worship and condemned the hypocrisy and arrogance of the Brahmins. According to Kabir the chief end of man is to obtain purity of

life and perfect faith in God. (Imperial Gazetteer of India Vol. VI page 218).

चैतन्य- इस महापुरुषका जन्म १४८६ ई० हुआ। इन्होने बंगाल तथा उडीसामें वैष्णव धर्म का प्रसार किया। इनका मत था कि जगन्नाथजी की दृष्टिमें सब लोग समान हैं। इनके समानता के उदार विचारों को देखकर लोग इन्हें विष्णू का अवतार ही मानते थे। हिन्दुओं की सब जातियोंसे ही नहीं किन्तु कई मुसलमान लोग भी इनके शिष्य हुए थे। इनका स्पष्ट मत इस प्रकार था कि मनुष्य चाहे किसीभी जाति में क्यों न उत्पन्न हुआ हो परमेश्वर की भक्ति सब को एकही सा शुद्ध कर देती है।

In 1486 chaitanya was born, who spread the Vaishnavaite doctrine, under the worship of Jagannath, throughout the deltas of Bengal and Orisa... With regard to Chaitanya's doctrine we have ample evidence. No race or caste was beyond the pale of salvation The Musalmans and Hindus shared his labours, and profited by his preachings. He held that all men are alike capable of faith, and castes by faith become equally pure (Imperial Gaztteer of India Vol VI page 219)

पहले बतला चुके हैं कि रामानुजाचार्यजीने श्रीरंग और दूसरे दूसरे पवित्र देवस्थानोंमें अंत्यजों को प्रवेश करने की इजाजत दी थी। इसी प्रकार चैतन्यजीने जाहिर किया कि जगन्नाथजी के छत्र के नीचे सब लोग समान हैं। इससे यहां पर यह आवश्यक है कि जगन्नाथ जी की उदारता के विषयमें कुछ कहा जावे।

(६) आज करीब करीब दो हजार वर्ष हुए होंगे जब से जगन्नाथजी के मंदिर में यह भाव माना जाता है कि सब लोग समान

हैं। खानपान तथा स्पर्श करनेमें भी किसी भी जाति विशेष का मनुष्य अलग नहीं रखा जाता। वहां की प्रथा है कि अशुद्धता मानी ही न जावे। मुसलमानोंके उपद्रव के कारण इन्हे दो, एकबार गुप्त होना पडा था। पर सन ३१८ से आज दिनतक, गुप्त होनेके कुछ वर्षोंको छोड, जगन्नाथजी के मंदिर में सब लोगोंका – अंत्यजों कांभी-प्रवेश एकसा होता रहा है। सब जाति के लोग, जन्मसे ही उत्पन्न होनेवाले ऊंचनीच के भावों को छोडकर यदि किसी एक मंदिरमें एकत्र होते हों तो वे पुरी के जगन्नाथजी के मंदिरही में होते हैं। इस दृष्टि से जगन्नाथजी के मंदिर को हम 'राष्ट्रीय मंदिर' कह सकते हैं। सारी हिन्दुसमाजपर इस मंदिर की महत्ता जमानेवाली यदि कोई बात है, तो वह यही समानता है। इस मंदिर में प्रवेश करनेपर विदित होता है कि अंत्यजों को भी कुछ अधिकार जन्मही से प्राप्त होते हैं। हिन्दु मात्र अभिमान से, गर्व से अंगुलि निर्देश करके कह सकता है कि पूर्व में पुरीमें ऐसा एक दिव्य मंदिर है जिसमें ऊंच नीच, छूत अछूत, ब्राह्मण शूद्र सब एकसे हैं। जहांतक जगन्नाथजी की सीमा है वहां तक न तो जातिभेद ही है और न छूत अछूत। उस स्थान में यह समझ बहुत प्राचीन कालसे चली आती है कि वहां सबका अन्न शुद्ध मानाही जाना चाहिए।

...Here (in puri) is the 'National temple' whither the people flok to worship from every province of India ...the poor out-cast lornes that there is a city on the far eastern shore in which priest and peasant are equal in the presence of the 'Lord of the World.' In the courts of Jagannath and outside the lion gate 100,000 pilgrims every year join in the sacramant of eating the holy

food, the sanctity of which overlaps all barriers of caste, race and hostle faiths. A Puri Priest will receive food from a Christian's hand (Imperial Gazetteer of India Vol XI page 311)

बारहवीं शताब्दि में रामानुजाचार्यने तथा आगे चलकर रामानन्द, चैतन्य आदि लोगों ने अपने मत को चलाने के लिए इस देवस्थान की समताका जो परंपरासे चली आई है, अच्छा उपयोग किया। इस मंदिर की समता को जब हम देखते हैं तब यह भाव हृदय में उठता है कि इस प्रथा का आविष्कार केवल इसी लिए हुआ है कि अछूत जातियों का बहिष्कार नष्ट किया जावे। जिन लोगों को समानता का अधिकार देश के किसी भी दूसरे हिस्से में नहीं है, उन्हे वह अधिकार जन्मतः प्राप्त है और होना चाहिए, इसी बात को सिद्ध करने के लिए और यह भाव जागृत करने के लिए ही इस मंदिर की स्थापना हुई होगी। परन्तु खेद है कि यह भाव पुरीमें ही परिमित है। मंदिर के बाहर किंबहुना पुरी के बाहर यह विषमता मानी ही जाती है। [वर्तमान समयमें कुछ अदूरदर्शी लोगों ने मंदिर के उद्देश में मलिनता लाने की चेष्टा इस प्रकार की है की सभामंडप में एक दूसरी मूर्ति रख दी है और यह प्रथा चलाई है कि अंत्यज इसी मूर्ति तक आवें उससे आगे नहीं। यह आधुनिक सुधार प्राचीन उदार मत के मार्ग में बाधा डालता है] जगन्नाथ पुरीमें मिलनेवाली यह शिक्षा कि 'जगन्नाथजी के मंदिर में सब लोग समान हैं, यदि सचाई से लोग मान लें तब बहुत कुछ काम हो जावेगा। जगन्नाथ-परमेश्वर सारे संसारको व्यापता है। उसका सच्चा मंदिर यह जगत् है। तब इस मंदिर को बनानेवालों का उद्देश वास्तव में यह होगा कि जगन्नाथजी के सच्चे जगत्रूपी मंदिर में सब लोग समसमान हैं। उनके सन्मुख कोई भी जन्मतः

ऊंच तथा जन्मतः नीच नहीं है। यदि धर्मात्मा हिन्दु, जो कि विष-मता की कल्पनाओं में डूबे हैं, इस उद्देश की ओर दृष्टिक्षेप करेंगे तो कितना भारी कार्य होगा? कैसी एकता होगी?

सिक्ख धर्म— सिक्ख धर्म गुरु नानक साहब का चलाया हुआ है। इस धर्म में कई मुसलमान भी शामिल थे। इससे विदित होता है कि इसमें जातिपाति, 'छूत अछूत आदि को स्थान नहीं था। इस धर्मका मुख्य ग्रन्थ ' ग्रन्थसाहिब ' है जिसके चरयिता गुरु नानक ही हैं। उसमें जो उपदेश है वह यही बात बनाता है कि लोगोंपर जन्म के कारण किसी प्रकार का बहिष्कार न करो किन्तु सबको समान जानो। ऊंचता केवल आचरण से ही पहिचानी जाना चाहिए। देखिए—

पतित पवित्र लिये कर अपुने। सगल करत नमसकारो।
वरण जाति कोऊ पूच्छे नांहीं। बांछहि चरण रिवारो॥ १॥
ठाकुर ऐसो नाम तुमारो। सगल सृष्टिकी धनी कहीजै॥
जिनको अंग निरारो। एकराओ साधसंग॥ २॥
नानकबुध पाइ। हरिकीरतन अधारो॥
नामदेव त्रिलोचन कबीर। दासरो मुकति भइयो चुनि आरो॥३॥
—गुरु ग्रन्थसाहिब गुजरी महिला० ५

कबीर सोई मुख्य धन्य है। जिनमुख निकले राम।
देही किसकी बापरी, पवित्र होगा ग्राम॥ १॥
कौन को कलंक रहयो, रामनाम लेत ही।
पतित पवित्र भये। राम कहत ही॥ २॥
पवित्र पवित्र पवित्र पुनीत नाम जपत।
नानक मत प्रीत॥ ३॥
जाति है न पाति है न जाति पाती जाति होत है।

न सत्र है न मित्र है न तात मात गोत है ।
न वाध है न घाट है न घाट वाध होत है ।
जिमी जमान के विषे सम सत एक जोत है ॥ ४ ॥
जाति वरण को रहन न देखो, कर इकरार दिखाओ ॥ ५ ॥
जाति वरण नहि पूंछिए । सच घर जिस अउताफ ॥
आगे जाति न जोर है । आगे जीत न वे ॥ ६ ॥
(गुरुग्रंथसाहिब गुजरी महला ५)

नानकजी के इन वचनोंमें इस प्रकार का वोध है:—
(१) पतित लोग परमेश्वर की भक्ति से ही पवित्र होते हैं । (२) जाति की या वर्ण की न तो पूंछपांछ करो और न उनका आदर करो । (३) आचार का ही आदर करो । (४) जातपात कुछ है ही नहीं । (५) कोई भी मनुष्य जातिके कारण हीन नहीं है (६) वेही नीच वनते हैं जो दुष्टकर्म करते हैं । (७) संपूर्ण संसारके लोग समान हैं । (८) परमेश्वर को भक्तिसे नगर तक पवित्र हो सकते हैं, तब देह अशुद्ध तथा अछूत कैसे रह सकता है? (९) एक ही परमेश्वर की दिव्य ज्योति जल रही है। (१०) उस के प्रकाश के सामने जातिका अभिमान तथा जन्म का ऊंचापन ठहर नहीं सकता ।

गुरु नानकदेवजी ने जिन मुसलमान बने हुए लोगों को तथा जन्मसे जो मुसलमान थे उनको अपने पंथ में किस प्रकार मिलाया, यह हाल 'गुरु नानकजी की जन्म साखी' नामक ग्रन्थ में विस्तार से दिया गया है । उन्होने यह प्रथा भी जारी की थी कि शुद्ध किए हुए मुसलमानों के घर का अन्नजल लेना चाहिए। इससे विदित होगा कि उन्होनें सिक्ख धर्म में छूत अछूत रहने नहीं दी ।

(८) गुरु अमरदास जोगीसार— इन्हे तीसरी पादशाही भी कहते हैं। इन्होने अल्लावर खां को सिक्ख धर्म की दीक्षा दी और उसे अपने पंथ में शामिल किया। इसी प्रकार इनने जालंदर जिले के महीदपूर, वकाला आदि ग्रामके सिकंदर, लुहार, जातियों के मुसलमानों को शुद्ध कर सिक्ख वनाया।

(९) गुरु हरगोविंद सिंग- छटी पादशाही (छठवां गुरु) इन्होंने १६८१ ई में छः मुसलमानों को तथा कुछ पतित लोगों को शुद्ध किया।

(१०) गुरुगोविंद सिंह- दसवीं पादशाही (दसवां गुरु) इन्होंने नीच अंत्यज जाति की स्त्रियों को जो मुसलमान हो गई थीं सिक्ख धर्म की दीक्षा दी और उनका विवाह वीर सिक्खों के साथ कराया। वंदा वैरागी मुसलमान था। गुरुगोविंद सिंह के समय में ही वह सिक्ख वन गया ।

इस प्रकार अनेक घटनाएं हुई वे सव इस पुस्तक में नहीं दी जा सकतीं। [नमूने के लिए जितना लिखा है काफी है। विस्तार से जिस किसी को पढना हो उसे चाहिए कि वह भाई गयान सिंह जी की वनाई हुई 'खालसा धर्म- पतितपावन भाग' पुस्तक पढे। मूल गुरु की परम्परा दसवें गुरुतक अच्छी तरह चलती रही। आगे धीरे धीरे इन क्षात्रधर्म के लोगों पर हिन्दुओं के जातिभेद का प्रभाव पडा। इसका परिणाम यह हुआ कि पुरानी लकीर के फकीर हिन्दुओं के सदृश वेभी शुद्धाशुद्ध मानने लगे। मूल ग्रन्थमें अर्थात् ग्रन्थ साहवमें जिसे गुरु नानक ने स्वयं रचा था इस प्रकार की विषमता की रीति रस्मों के लिए कोई आधार नहीं है। वैष्णव या भागवत पंथ के सदृश ही सिक्ख धर्म उदारता का पक्षपाती है। परन्तु योग्य समयपर इन उदारता के भावों को चालना नहीं दी गई इससे जातिभेद तथा छूत अछूत

के दोषोंने इस में प्रवेश किया। उन दोषों को निकाल भगाने के हेतु एक मंडली बनी है जिसका नाम है 'खालसा शुद्धि मंडली'। इस मंडली के प्रयत्नों का फल यह हो रहा है कि पहले के सदृश अबभी पतित लोगों को तथा दूसरों को भी शुद्ध करने का क्रम शुरू है। हिन्दू धर्मावलम्बियों को चाहिए कि वे इस प्रयत्न की ओर ध्यान दें।] इससे इतना अवश्य ही मालूम होता है कि सिक्ख धर्म में जातिभेद तथा अछूत जातियां नहीं हैं।

(११) महाराष्ट्र के पंथ- दूसरे प्रान्तों में भागवत धर्म के संबंध में जो हलचल हुई, उसके संबंधमें महाराष्ट्र कदापि पीछे न था। वारकरी संप्रदाय के लोग हरसाल आषाढ और कार्तिक की ग्यारस के दिन पंढरपूर में विठ्ठल का दर्सन करने ये लोग जाते हैं। इतनाही नहीं महाराष्ट्र संत मंडली भागवत धर्म के विश्वकुटुंब के मत का प्रचार करनेवाले थे। जिस प्रकार पुरीमें जगन्नाथजी के तीर्थस्थान में जातपात भूल जाना पडता है और सब लोग समानता की दृष्टिसे देखे जाते हैं, उसी प्रकार पंढरपूर के श्री विठ्ठल के तीर्थस्थान में सब की समानता नजर आती है। आज दिन भी जहां वारकरी पंथ का 'भगवा' झंडा हो और जहां विठ्ठल नामका घोष होता हो वहां जात पात का नाम तक नहीं रहता। यही बात पंढरपूर में दिखाई देती है। नामदेव, तुकाराम, एकनाथ, चोखामेला, गोरा कुम्हार आदि सब संतोंने भागवत धर्म की समानताका प्रचार किया। यह बात तो प्रसिद्ध ही है कि एकनाथजीने अंत्यज के घर अन्नग्रहण किया। इससे स्पष्ट होता है कि उनमें छूत अछूत आदि विषमता की बातें नहीं थीं। वारकरी पंथ में सब जाति के लोग समानता से शामिल होते हैं। घर लौटने पर परिस्थिति की भिन्नता के कारण

वे फिर ज्यों के त्यों हो जाते हैं। परन्तु उन वारकरी लोगों में जो पंढरपूरको जानेके लिए निकलते हैं उनमें वही एकता आजभी विद्यमान रहती है। इससे विदित होगा कि इसके आद्य प्रवर्तकों ने कैसी भारी इच्छाशक्तिसे एकता का बीज बोया था। महाराष्ट्र के साधुसंतों के वचन भी वैसेही अधिकार से समानता के तत्त्वों को कहते हैं जैसे वैष्णव धर्मके पहले दिए हुए वचन। वे विस्तारसे नहीं दिए जा सकते। तबभी नमूने के लिए कुछ यहां उद्धृत करते हैं। :-

विष्णुमय जग वैष्णवांचा धर्म। भेदाभेद भ्रम अमंगल ॥ १ ॥
कोणाही जीवाचा न घडो मत्सर। वर्म सर्वेश्वर पूजनाचे॥ २ ॥
तुका म्हणे एका जीवाचे अवयव। सुख दुःख जीव भोग पावे३॥

अर्थात् सारा संसार विष्णुमय है, सब धर्म वैष्णव धर्म है इससे भेद अभेद मानना भ्रम है और अमंगलभी है। परमेश्वर की पूजा करनेका सार यह कि किसीभी जीव के विषयमें मत्सर नहीं करना चाहिए। संसार के सब लोग एकही शरीरके अंगप्रत्यंग हैं। उनमें से किसी एकको दुःख होनेसे सारे शरीरको दुःख होता है उपर्युक्त वचन संत तुकाराम का है।

इसी प्रकार संत तुकाराम और भी कहते हैं कि:-

जे का रंजले गांजले। त्यांसी म्हणे जो आपुले ॥ १ ॥
तोचि साधू ओळखावा। देव तेथेंचि जाणावा ॥ २ ॥
ज्यासि आपंगिता नाहीं। त्यासी धरी जो हृदयीं॥ ३ ॥
दया करी जे पुत्रासि। तेच दासा आणि दासी ॥ ४ ॥
तुका म्हणे सांगू किती। तोच भगवंताची मूर्ती ॥ ५ ॥

अर्थात् वह मनुष्य जो आपत्ति में फंसे हुए को सहायता पहुंचाता है, जो नौकरों पर भी पुत्र के समान प्रेम करता है, जिसके पास भेदभाव का नाम तक नहीं है, वही सच्चा साधु है, उसी में ईश्वर का वास है। इतना ही नहीं वही साक्षात् भगवान की मूर्ति है। और भी देखिए:—

उंच नीच कांहीं नेणे भगवंत। तिष्ठे भावभक्ति देखोनियां ॥१॥
दासीपुत्र कण्या विदुराच्या भक्षी। दैत्य घरीं रक्षी प्रल्हादासी॥२॥
चर्म रंगूं लागे रोहिदासा संगीं। कबीराचे मागीं विणी शेले॥३॥
सजन कसाया विकूं लागे मांस। मळा सावत्यास खुरपूं लागे॥४॥
नरहरी सोनारा घडों फुंकूं लागे। चोखामेळ्या संगें ढोरें ओढी॥५॥
नामयाचो जनी-सवें वेची शेणी। धर्मा घरीं पाणी वाहे झाडी॥६॥
नाम्या सवें जेवी नव्हे संकोचित। ज्ञानियाची भिंत अंगीं ओढी॥७॥
अर्जुनाचे रथीं होय सारथी। भक्षी पोहे प्रीतीं सुदाम्याचे ॥ ८ ॥
गौळीयांचे घरीं गाई अंगे वळी। द्वारपाळ बळीद्वारीं झाला ॥ ९ ॥
व्यंकोबाचे ऋण फेडी हृषीकेशी। अंबऋषीचे सोसी गर्भवास॥१०॥
मिराबाईसाठीं घेतां विष प्याला। दामाजीचा झाला पाडेवारा॥११॥
घडी माती वाहे गोऱ्या कुंभाराची। हुंडी मेहेत्याची अंगे भरी॥१२॥
पुंडलीकासाठीं अजुनि तिष्ठत। तुका म्हणे मात धन्य त्याची॥१३॥

परमेश्वर ऊंच नीच कुछ नहीं मानता। वह तो भक्ति भाव को देखता है। यही बात नीचे लिखे उदाहरणों से स्पष्ट होती है— विदुर दासी पुत्र थे फिर भी उनके घरके चांवल भगवान् को राजमहल के नेवते से अधिक प्रिय हुए। राक्षसों के कुल में पैदा होने पर भी भगवानने प्रहलाद की रक्षा

की। रोहिदास जातिका चमार था। परन्तु वह ईश्वर भक्ति करता था। इससे भगवान् को उसका चमडा रंगाने का काम करना पडा। कबीर भगवान का भजन करने में मस्त रहते थे इससे भगवानने उनका कपडे बुनने का काम किया। सजन नाम का कसाई भी भक्त था, उसके लिए भगवान मांस बेचने बैठ जाया करते थे। साँवता जाति का माली था, उसका खेत खोदने में भगवान मदत करते थे। नरहरी सुनार का भी काम भगवान कर-दिया करते थे और चोखामेला के साथ ढोर चराते थे। वे जनाबाई के साथ जंगलमें कंडे बिनने, धर्म के घर पानी भरते तथा झाडा बहारी करते थे। वे नामदेव के साथ भोजन करते थे, उनके हृदयमें इस बात का संकोच नहीं था कि यह दर्जी है। जब ज्ञानदेव एक दीवालपर सवार हुए तब भगवान खुद उस दीवाल को खांचकर ले गए। वे अर्जुन के सारथी हुए, उन्होंने सुदामा ब्राह्मण की दी चिवडी को बडे प्रेम से खाया। भगवान ग्वाल के साथ गाएं चराते थे। वे बलिराजाके द्वाररक्षक हुए। व्यंकोबा का ऋण उन्होंने चुकाया। अंबरीप ऋषि के लिए उन्हे गर्भवास में रहना पडा। वे मीराबाई के लिए विष पी गए। वे दामाजीके पहरे वाले हुए। गोरा कुम्हार के लिए वे घडे बनाते थे, नरसिंह मेहता के लिए उन्होंने हुंडी का रुपया दिया। वे पुंडलीक के आज्ञा के कारण आज दिनतक पंढरपूरमें कमरपर हाथ रखकर खडे हैं। जिस पुंडलीकके लिए भगवान अब तक खडे हैं उसकी माता की धन्य है?

इस प्रकार भगवान हरएक जाति के भक्त को मदद पहुंचाते रहे। इससे स्पष्ट है कि ईश्वर के पास जात पात का भेद भाव नहीं है, उसे तो केवल भक्ति चाहिए, यह साधु तुकारामका मत है।

परमेश्वर ने जब सब जातिके भक्तों को अपनाया है, तब क्या यह स्पष्ट नहीं है कि ईश्वर के पास ऊंच नीच भाव नहीं है। वैष्ण धर्म में यह अमंगल भेद नहीं है। किसी भी जीव को जन्मसे निन्द्य समझना भारी गलती है। श्री समर्थ रामदासजी कहते हैं-

विरक्तें शुद्धमार्ग सांगावा। विरक्तें संशय छेदावा।
" विरक्तें आपुला म्हणावा। विश्वजन " ॥ ३७ ॥
दासबोध, द० २ स० ९

रामदास स्वामीका उपदेश यही है कि ' सब मनुष्य अपने हा हैं यह जानो। "

—o—

भाग ११ वां।

छूत अछूतकी कल्पना का समाजपर परिणाम।

छूत अछूत क्यों उत्पन्न हुई, वह क्यों बढी· भिन्न धर्मोंमें इसके पक्षकी तथा विपक्ष की आज्ञाएं कौनसी हैं, भिन्न भिन्न आचार्यों के तथा साधु संतोंके इसके सम्बन्ध में कैसे मत थे, इतनी बातों का विचार अब तक हुआ। और यह भी स्पष्ट किया गया कि छूत-अछूत का भेद तथा उसको उत्पन्न करनेवाला जातिभेद ये दोनों भेद अधिकांश धर्मसंस्थापकों के तथा उदारधी आचार्यों के मतानुसार आदरणीय नहीं हैं। अब इस भाग में यह देखना है कि उदारधी आचार्योंके तथा विश्वकुटुंबी साधुसन्तों के सत्य के उपदेशों की ओर ध्यान न देकर, पुनः पुनः उसी छूत अछूतको अपनानेसे हिन्दुसमाज पर कौन कौन इष्ट वा अनिष्ट संस्कार हुए, और उसके कौन कौन फल हमें भुगतने पडते हैं।

इसके प्रकार दो हैं· (अ) घरेलू छूत अछूत तथा (आ) जातियोंके बीच की छूत अछूत। इनमें से प्रथम प्रकारकी छूत अछूत की व्याप्ति कम अर्थात् कुछ समय तक है, परन्तु दूसरी प्रकारकी अछूत किसी भी स्थिति में अपरिहार्य मानी जाती है। एकही जाति का मनुष्य स्नान करने पर अपनी ही जातिके दूसरे मनुष्य को स्पर्श नहीं करता, इस प्रकार की बातें पहिले भेद में आती हैं। और यह बात न केवल उन लोगों में है जिन में रोटीव्यवहार तथा बेटी व्यवहार होता है, किन्तु एक ही कुटुम्ब के लोगों में भी यह बात पाई जाती है। परन्तु यह अछूत क्षणिक है, इस लिए इसके कारण कोई हानि नहीं होती। जो मनुष्य घडीभर के लिए अछूत था, वही कुछ समय— स्नान करने के

याद छूत हो जाता है। यद्यपि इसमें भेदभाव की जड है परन्तु वह अति अल्प अंश में है, इससे इस प्रकार की अछूत, वैसी घातक नहीं है जैसी दूसरे प्रकार की है। एक मनुष्य स्नान किया हुआ है तथा धौत-वस्त्र पहिना है. क्या केवल इसीलिए वह अस्नात मनुष्य को तथा अधौत वस्त्र को— धागे को भी- स्पर्शही न करे। छोटे बालकों के अज्ञान के कारण शुद्ध का अशुद्ध बन जाने से वृद्धों को कैसी अडचन होती है सो तो हर एक मनुष्य अपने अनुभवसे रोज देख सकता है। इस प्रकार की समझ के कारण समय कैसे व्यर्थ नष्ट होता है, तथा वृद्धों के वाक्प्रहार से बालकों के कोमल मनपर किस प्रकार कठोर आघात होता है यह बात विचार करने योग्य है। किसी चीज को लेकर कुतूहल उत्पन्न हो जाने पर, उसे प्यारी माता को बतलाने के लिए जब एक बालक प्रेममग्न हो देह की सुध भूल अपनी माता के पास दौड कर आता है,उस समय यदि माता क्रोध से कह दे, " दूर हो, छीएगा?" तो उस प्रेम भरे नन्हे हृदयपर इस कठोर वाणी का परिणाम क्या होगा? जिज्ञासा के कारण किसी अनोखी वस्तु को बतलाने के लिए कोई बालक निस्सीम प्रेमसे आता है, तब उस प्रेमपर वृद्धों का वाक्प्रहार होता है। जिस से वह शतधा विदीर्ण हो जाता है। उस प्रेममग्न तथा हँसते हुए बालक पर इन कठोर शब्दों का इतना दुष्ट परिणाम होता है कि बालक एकदम रो देता है और उसकी आंखों से आंसू बहने लगते हैं। आनंद के शिखर से वह दुःख के गढ्ढेमें फेंक दिया जाता है। ऐसे अवसर बारबार आने के कारण कुसंस्कार से मन सं-कुचित बन जाता है। उनके दिलमें उदार मतों के लिए स्थान ही नहीं रहता। और ऊंचा प्रेम इन आघातों के कारण मद्दा पड जाता है। ये बालक आगे चलकर जब व्यवहार करने लगते

हैं तब उनके अनुदार एवं संकुचित भाव नजर आते हैं। राष्ट्र व्यक्तियों से बनता है। इससे वे दुर्गुण राष्ट्र में भी दिखने लगते हैं। इस प्रकार व्यक्तिगत शुद्ध अशुद्ध एवं छूत अछूतकी भ्रामक कल्पनाओं से दांभिकताकी वृद्धि होती है और कुसंस्कार होते हैं। इस कल्पना से होने वाले सूक्ष्म परिणामों पर ध्यान देने की यहां आवश्यकता नहीं है।

अब दूसरे प्रकार की जांच करें। पहिला प्रकार व्यक्तिगत है। उसी की वृद्धि होकर वह समाज पर लादा गया है। और इसी व्यवहार के कारण कुछ जातियां बहिष्कृत हुई हैं। इस सामाजिक बहिष्कारको ब्राह्मणों ने योग के नियमोंके बहाने, क्षत्रियों ने जेतापन के अभिमान के कारण और वैश्योंने व्यापार की संग्रहना के कारण चलाया है। अन्त्यजों के बहिष्कार का स्वरूप इस प्रकार व्यापक है इसी लिए वह आज जैसा उग्रतर हुआ है। अब देखें कि इस बहिष्कार का समाज की दृष्टि से क्या परिणाम हुआ है -

(१) यदि दूसरे को अवनत दशा में रखें तो अपनी उन्नति होगी और दूसरे की उन्नति से खुद की अवनती होगी। इस संशयित नियम पर चलने ही से भारत वर्ष के तीन वर्णों ने अन्त्यजों को बहिष्कृत समझा और इसीसे उनकी अवनति हुई। जिस प्रकार किसी मनुष्य को बन्दकर उसपर पहरा करनेवाला पहरेदार भी अपनी स्वतन्त्रता खो बैठता है - और वह भी दूसरे को पराधीन रखने के लिए खुदीसे - उसी प्रकार अन्त्यजों को दूर रखने के लिए त्रैवर्णिकों की वृत्तियां अनुदार बनी हैं। वर्तमान समय में बाईस करोड हिन्दुओं में छह करोड हिन्दू अछूत हैं। अर्थात् हर साढे तीन मनुष्यों के पीछे एक अछूत है। इस एक मनुष्य को अछूत मानने के लिए अर्थात् इसे अलग रखने के लिए उन

तीन या चार मनुष्यों को संकीर्णता को अपनाना पडता ही है। मान लीजिए एक मकान में चार मनुष्य रहते हैं उनमें से तीन कोई काम करने में चौथे को अलग रखना चाहते हैं। तो उन तीनों को अपने काम गुप्त रीतिसे, चोरी से करने होंगे। और चोरीसे काम करने की आदत पडजाने से उन तीनों की अवनती ही होगी। यदि चारों मिलजुलकर रहते तो जो स्वतन्त्रता उनके आचरण में रहती वह स्वतन्त्रता चोरी से काम करने की आदत पडने पर उनमें कदापि रह नहीं सकती। जिस प्रकार एक मकान में एक क्षुद्र कारण अनुदारता एवं मनका संकुचित भाव उत्पन्न होता है, उसी प्रकार किसी जाति विशेष को बहिष्कृत करने से समाज के हरएक मनुष्य में राष्ट्रीय संकोच उत्पन्न होता है। और ऐसा मालूम होने लगता है कि कोई भी सार्वजनिक काम करना हो तो उस समय पक्षपात करें। ऐसे समाज के धुरीण ही पक्षपाती रहते हैं, इससे देश के कानून भी पक्षपात-युक्त बनते हैं। इस प्रकार जब जनताको एकबार संकुचित वृत्ति की आदत पड जाती है तब प्रगती क्यों कर हो सकेगी?

(२) जब देश के कानूनों में यह जाति संबंधी पक्षपात घुसता है, तब लोगों के मन अनुदार विचारोंसे दूषित रहते हैं। उसी तरह एक बात और होती है। वह यह कि इस प्रकार दूषित मन के लोग विश्व कुटुम्बित्व की कल्पनाएं केवल मुह से बोल सकते हैं। अर्थात् विश्वकुटुंवित्व के विचार शब्दसृष्टीमें ही रहते हैं वे आचारमें नहीं आसकते। इतनाही नहीं किंतु ऐसा राष्ट्र आध्यात्मिक उन्नति भी नहीं करने पाता क्योंकि वह तो उदारता के भावों से ही हो सकती है। भारत वर्ष में जिन साधुसंतों का नाम आध्यात्मिक उन्नति करने में विशेष रूपसे प्रसिद्ध है, उन साधुसंतों के पास असमानता का, अनुदारताका एवं पक्षपात का नाम

तक न था। पक्षपात, जातिके विषयमें अहंकार या बहिष्कारका जहां वास्तव्य होगा वहां आध्यात्मिक उन्नति हो ही नहीं सकती।

(३) यदि कहें कि भौतिक उन्नति तो होगी। तो उसमें भी यही दिखता है कि बहिष्कृत लोगों में असंतोष फैला हुआ रहता है इससे वारवार विघ्न उपस्थित होने की संभावना होती है। इस से यह भी नहीं कह सकते कि भौतिक उन्नति होगी। समाज के एकचतुर्थांश लोगों को बहिष्कृत, असंतुष्ट और दूर रखकर तथा उन लोगों को अज्ञानी रखकर यदि कोई भौतिक उन्नति करना चाहें तो वह हो नहीं सकती। शरीर के एक भागमें बडा फोडा हो जानेसे जिस प्रकार संपूर्ण शरीर को बुखार आना है, उसी प्रकार समाज का एक चतुर्थ भाग अशिक्षित वा कुशिक्षित रहने देनेसे समान उन्नति में बाधा आती है। इतनाही नहीं, उन्नति होना अ-संभव हो जाता है।

(४) जिस समाज के चतुर्थ अंश के लोग अपढ हैं तथा जिन पर किसी भी प्रकार सुसंस्कार होने की संभावना नहीं है, उस समाज में इन अपढ लोगों द्वारा चोरी, डाका, खून, मारपीट आदि होने की सम्भावना रहती है। अछूत जातियों में अपराधों का प्रमाण अधिक है, इसका कारण बहुत कुछ उन लोगों का अज्ञान है। जान बूझकर बहिष्कृत किए लोगों द्वारा इस प्रकार समाज को उपद्रव पहुंचना स्वाभाविक है। दूसरे लोगों के साथ रहकर ज्ञान संपादन की स्वतन्त्रता एवं सुविधा यदि उन्हे हो तो इसमें कोई संदेह नहीं कि उनके अपराधों का प्रमाण भी कम हो जावेगा।

(५) यदि एक दूसरेके साथ लोग मिलते रहें तो परस्पर प्रेम की वृद्धि होती है, और ज्ञान का प्रसार होता है। जो लोग एक

दूसरे से मिलते-जुलते नहीं उनमें यदि द्वेष भाव न भी बढ़े तो प्रेमभावका अवश्य ही अभाव रहता है। जिनमें प्रेम नहीं उनमें एकता नहीं। आवागमन तथा मिलने-जुलने के अभाव से समाज तितर-बितर हो जाता है। इसी प्रकार आजका हिन्दुसमाज तितर-बितर हुआ है। जबतक अंत्यजोंपर बहिष्कार है, जबतक छूत अछूत जारी है तब तक हिन्दुसमाजमें अबाधित एकता होना असंभव है। जो शक्ति एकता में है, वह बिथरे हुए समाजमें कदापि हो नहीं सकती। अपने समाज की यह अवस्थाही इस बात की उत्तर दायी है कि क्षुद्र समाज भी इसे वारंवार पराजित करते हैं। और यही कारण है कि अपना समाज कोईभी सामुदायिक काम करने में असफल होता रहा है।

(६) मनुष्य की उन्नति का अत्युच्च शिखर किसी जाति विशेष का सदाके लिए बहिष्कार करने से नहीं मिल सकता, बल्कि ऐसे बहिष्कारों को दूर करने हो से मिल सकता है। समस्त मानव जाति की उन्नति के पवित्र कार्य में अपना हाथ बटाने में आज हिन्दुसमाज असमर्थ है, अथवा उसे इस अत्युच्च कार्यकी खबर तक नहीं है, इस भारी भूल का भार उस चिरजीवी बहिष्कार पर है जो हमारी समाज ने अपने ही भाइयों पर लादा है। जो लोग स्वदेश के निवासी भाइयोंकी उन्नति समानतासे नहीं कर सकते क्या वे इससे उच्चतर कार्य कर सकेंगे ?

(७) कहना न होगा कि आर्थिक दृष्टि से भी इस प्रकार के बहिष्कृत लोग समाज में रहने से समाज की हानि ही होगी।, जो लोग दूसरी जातियों से बराबरीका बर्ताव नहीं कर सकते ज्ञान संपादन नहीं कर सकते, निश्चित हीन व्यवसायों को छोड कर दूसरे व्यवसाय रुचि होनेपर भी नहीं कर सकते, जिन्हे उच्च व्यवसायों को सीखने की सुविधा नहीं, जिन के तैय्यार किए

पदार्थों पर स्थित अछूत उन पदार्थों की विक्री के आड आती हैं, जिनके लिए श्रेष्ठ आचार-विचार समझने के हेतु कोई प्रबन्ध नहीं रहता, जिन्हे जायदाद बनाने, धन उपार्जन कर उसका संग्रह करने, अच्छे अच्छे वस्त्र पहिनने तक को धर्मशास्त्र मना करता है, उन लोगों का दारिद्र्य अनिवार्य हो जाता है। उनकी आर्थिक दशा सुधारने के सब रास्ते रुक जाने के कारण उन्हे सदा के लिए दरिद्री रहना आवश्यक हो जाता है। हिन्दुस्थान में ऐसे छः करोड लोग हैं। जो धर्म के ही कारण, धर्मशास्त्र तथा रूढिके नियमोंके ही कारण अपनी आर्थिक उन्नति नहीं कर सकते। भरे बजारमें अधिक से अधिक विकनेवाली वस्तुको वेच नहीं सकते, तथा दुकान लगानेसे ग्राहक नहीं मिलते, इससे वे लोग अपनी आर्थिक दशा दूसरों के बराबर भी नहीं कर सकते। यह हाल केवल इन लोगों की दरिद्रता काही नहीं किन्तु देशकी गरीवी का है। जिस समाज में छः करोड लोगोंको पद्धति के अनुसार दरिद्री रखने का प्रबन्ध है, क्या आश्चर्य कि उस समाज की आर्थिक दशा विगडी रहे? जिस समाज-रचना के कारण एक चौथाई लोगों का दरिद्री रहना अनिवार्य हो जाता है, किस प्रकार कह सकते हैं कि वह समाज-रचना आर्थिक उन्नति के आड नहीं आती? संपत्ति के अभावही से अप्रामाणिकता, चोरी, शाठ्य, आदि दुर्गुणोंकी वृद्धि होती है। समाज में इन दोषों की वाढ होने पर कैसे सम्भव है कि उस समाज में शान्ति रहे?

(८) किसी भी समाजपर जब बहिष्कार किया जाता है तब उसका कारण द्वेष ही रहता है। एक समाज की काल्पनिक उच्चता और दूसरे की काल्पनिक नीचतासे ही उसे पुष्टि मिलती है। समाज को एक जाति जब दूसरी को बहिष्कृत करती है तब बहिष्कृत जाति-सब प्रकार से हीन रहते हुए भी— बहिष्कार

करनेवाली जातिका द्वेष ही करती है। जिसे राजसत्ता, धर्मका अधिकार, या व्यापारि-संघ आदि में से किसी एक भी सहायता नहीं होती वह बहिष्कृत समाज कुछ समयवाद अपनी बहिष्कृत स्थितिमें भी संतुष्ट रहने लगता है, और बहिष्कृत करनेवाले का द्वेष भूल जाता है। परन्तु जब उसे बदला लेने के साधन उपलब्ध होते हैं तब वह चुप नहीं बैठता किन्तु अपना द्वेष पटा लेता है। इसी लिए उचित यह है कि भूल जान लेते ही बहिष्कार को हटाकर सबसे मित्रताका वर्ताव करना और राष्ट्र का हित तथा मनुष्य की उन्नति के लिए भी इसी की आवश्यकता है। बहिष्कृत लोगोंको धन अथवा ज्ञान प्राप्त होने पर वे बहिष्कार करने वालों से बदला अवश्य लेंगे। मनुस्मृति की आज्ञा कि 'शूद्रको धन-संचय न करने दो, क्यों कि वह धनी हो जाने पर ब्राह्मणों को वा द्विजोंको सताता है।' इस आज्ञा का अभिप्राय वही है जो हम ऊपर बता चुके हैं। तिरस्कृत लोग योग्य समय के ताक में रहते हैं। अपने को ऊंच समझने वालों को इस बात की सावधानता रखनी पडती है कि यह मौका न आने पावे। इस प्रकार जिस समाजने अपने चौथाई हिस्से को मानवी हकों से वंचित रखा वह उन्नति किस प्रकार प्राप्त कर सकता है? द्वेषोत्पादक होने के कारण ही यह छूत अछूत उन्नति में बाधा डाल रही है।

(९) जाति विशेष के बहिष्कार में यह समझ प्रचलित हो जाती है कि हम जन्मतः ऊंचे हैं और बहिष्कृत लोग नीचे हैं। इस समझ के कारण गुणों की ओर से ध्यान उचट जाता है। इस प्रकार जब गुणों की महत्ता कम होने लगती है, तब सद्गुणों की वृद्धि की ओर भी असावधानता हो जाती है। जब यह सदा के लिए निश्चित हो जाता है कि अमुक कुल ऊंच तथा अमुक कुल नीच हैं और उच्च कुल के लोग जन्मसे ही श्रेष्ठ

समझे जाते हैं, तब लोगों में गुणों की अभावावस्था के विषय में बे फिकरी पैदा हो जाती है। नीच कुल के लोगों को निश्चय रहता है कि वे कुछ भी करें तब भी उच्च लोगों में उनकी गिनती कभी हो नहीं सकती। इस लिए उनका ध्यान सद्गुणों की ओर नहीं जाता। इस रीतिसे दोनों प्रकार के लोग गुण हीन होते जाते हैं और अन्तमें पूरा राष्ट्र अवनति को पहुंचता है। हिन्दुस्थान की ऊंच जातियों का ध्यान जन्मके श्रेष्ठत्व की ओर है इस से आवश्यक सद्गुणों की ओर से उनका ध्यान उचट गया है। और वहिष्कृत लोग सदा के लिए आश्रयहीन होगए हैं। तब यह सिद्ध है कि जाति विशेष का वहिष्कार राष्ट्र की हानी करता है।

(१०) पांच तत्त्वों से बना हुआ यह शरीर सब के लिए समान है। सबके पास मन, तथा बुद्धि है, इससे विवेकशक्ति तथा निश्चयात्मक ज्ञान भी हर एक के पास है। आत्मा सब में एक ही सा है तथा सब वस्तुओं में परमात्मा का वास्तव्य भी एकसा है। तब छूत और अछूत लोगों में ऐसा कोई फरक नहीं बताया जा सकता जिससे यह स्पष्टतया सिद्ध किया जावे कि अछूत त्याज्य है। जो अछूत ज्ञानसे सिद्ध नहीं हो सकती उसके माननेके लिए मिथ्या समझ का प्रसार करनेकी आवश्यकता होती है। मिथ्या ज्ञान का अधिकार शुद्ध ज्ञान पर जमाना आवश्यक होता है। शुद्ध विचार के प्रवाह को कृत्रिम झुकाव देना पडता है। इसी प्रकार का मिथ्या ज्ञान मुक्ति का साधन कदापि नहीं हो सकता। सच्चा ज्ञान ही मुक्ति को दिला सकता है। इस शुद्ध सच्चे ज्ञान से दूर रखने का कार्य वहिष्कार की प्रथा कर रही है. इससे वह हानिकारक है।

(११) जाति विशेष का वहिकार करने से भूत दया, देश-बंधु-प्रेम, आत्मवत् समदृष्टि आदि ऊंची धार्मिक भावनाएं लुप्त होतीं हैं। धार्मिक ऊंचे गुणों का लोप होना अवनति का साधनहै।

(१८)बहिष्कृत लोगों को मौका नहीं मिलता कि वे शौर्य. धैर्य, साहस, विद्वत्ता व्यवहार कुशलता आदि राष्ट्रीय गुणों में दूसरों की बराबरी कर सकें। इससे उक्त गुण उन लोगों मे से नष्ट हो जाते हैं। इस प्रकार का गुण हीन समाज राष्ट्र के गले में बंधी हुई लकडी समान भारभूत बनकर राष्ट्रकी प्रगती में रुकावट डालता है। इसी लिए आवश्यकता है कि जितने जल्द बने उस बहिष्कार को हटा दें।

ऐसे अनेक कारणों से अन्त्यजों का बहिष्कार तथा छूत अछूत हिन्दुओं की प्रगती में बाधा डाल रहा है, पहले भी इसने बाधा डाली है, और जब तक वह रहेगा बाधा डालताही रहेगा। इस छूत अछूत से किसी भी प्रकार से लाभ नहीं हुआ है। इसके विपरीत धार्मिक, नैतिक,सांपत्तिक,औद्योगिक राष्ट्रीय, सामाजिक, आत्मिक आदि सब तरह से उसने अपायही किया है। राष्ट्र में जैसी उच्च जातियों की आवश्यकता है वैसेही उनकी भी है जो नीच समझे गए हैं। हमारे राष्ट्र में उन्हे रुपयेमें चार आनेका हक हैं। जिस प्रकार अज्ञानी नाबालिक मालिक अपनी जायदाद का प्रबन्ध नहीं कर सकता और ट्रस्टियों ने उसे ज्ञान प्राप्त होने ही नहीं दिया तो वह मालिक कभी योग्य हो ही नहीं सकता; उसी प्रकार पिछडे हुए अछूत लोग हिन्दु-स्थान के नाबालिक अज्ञान मालिक हैं। उनके ज्येष्ठभ्राताओं का कर्तव्य है कि उन्हे अपनाकर इस योग्य बनावें कि वे अपना कार्य खुदही संभाल सकें। अपने भाई छोटे हैं, अज्ञानी हैं, पिछडे हुए हैं, इससे उन्हे अनन्त काल तक इसी दशामें पडे रहने देना मनुष्यत्व के लिए उचित नहीं। चार भाइयों में से तीन का जो हक है वही चौथे अज्ञानी काभी है। इसलिए समय के कारण बडप्पन प्राप्त ऊंची जातियों के लिए उचित होगा कि वे इस बात को समझकर अछूतों को अपनावें और उन्हे अपनी बराबरी का बनावें।

—०—

मार्ग की अड़चन।

(१) आप लोग देख चुके कि राष्ट्रका एक चतुर्थ अंश बहिष्कृत करने से किसी भी प्रकार से लाभ नहीं हो सकता। किन्तु इसके बिलकुल विपरीत होता है. अर्थात् हानि होती है। और इससे यह निश्चित हुआ कि उन जातियों का बहिष्कार जो बहुत प्राचीन समय से चला आया है, दूर किया जाय, तथा लाभ इसी में है कि उन जातियों का दर्जा दूसरी जातियों के समान किया जाय। अब देखना यह कि इस काम में कौन कौन अड़चने उपस्थित हो सकतीं हैं, तथा उन्हे दूर करने के लिये उपाय क्या हैं?

यहां पहला प्रश्न यह होता है कि इसमें धर्मशास्त्र के ग्रन्थ अनुकूल हैं या नहीं। यद्यपि हिन्दू लोग रूढिके दास हैं, चाहे वह रूढि धर्मसे बिलकुल विपरीत क्यों न हो: तब भी हरएक काम करते समय उन्हे धर्म की याद अवश्य होती है। आचरण धर्मशास्त्र के अनुकूल रहे वा प्रतिकूल, धर्मशास्त्र की याद हमेशा होना अच्छी बात है। इस स्मरण से ही तो वेद और दूसरे प्राचीन धर्मग्रन्थों के विषय में आजदिन तक आदर विद्यमान है। कई लोग बहाना करते हैं कि मामूली काम भी धर्मशास्त्र के वचन के अनुसार ही चलना चाहिए। वे यदि धर्मशास्त्रों की ओर अंगुलिनिर्देश करके, हजारों सालों से चली हुई, पुश्तों की चलाई हुई तथा रोम रोम में भरी हुई प्रतिबन्धक प्रथाओं को सुधारने में विघ्न करें तो आश्चर्य ही क्या? जो प्रथा पुरखाओं के समय

से चली आई है वह चाहे कितनी ही निंदनीय क्यों न हो, छोड़ी नहीं जाती। यह छूत अछूत की प्रथा दो हजार वर्षों के भी पहले से चली आती है। इतना भारी समय बीत चुकने के कारण यह प्रथा अनुवंशिक संस्कारों से परम प्रिय बन गई है। भेद और फूट फैलानेवाली अनेक परिस्थितियों के कारण यह प्रथा अब आत्माका एक अंश बन गई है। यदि कोई इस प्रकार की अंत्यजों के बहिष्कार की तथा छूत अछूत की प्रथाको हटाने को कहे तो आश्चर्य की कौनसी बात कि वे पुरानी लकीर के फकीर अपने मत की पुष्टि के लिए धर्मग्रन्थ के कुछ वचन सुनावें, चुम्बक तथा विद्युत शास्त्र के आविष्कारों को खींचतान कर यह भ्रम उत्पन्न करें कि वे आविष्कार इसी मत को पुष्टि देते हैं, यह भी कहें कि अज्ञेय के अज्ञात नियम इसी प्रथा को मानते हैं, अथवा मानस-शास्त्र के गहन सिद्धान्तों का मनमाना उपयोग करें। परन्तु आनंद की बात तो यह है कि सब धर्मशास्त्रकार इस मत के नहीं हैं कि इस प्रथा को चलावें।

जब लोग धर्मशास्त्र का विचार करते हैं तब एक बात भूल जाते हैं कि श्रुति के वचन ही अबाधित हैं और स्मृति के वचन केवल किसी खास समय के लिए मानना चाहिए। वेद की आज्ञाएं सदा के लिए एकसी हैं और स्मृति की आज्ञाएं समय के साथ बदलतीं हैं। स्मृति में हेर फेर होता है और होना भी चाहिए। क्यों कि स्मृतिग्रन्थ सामाजिक राजनैतिक तथा धार्मिक प्रबन्ध के कानून हैं और श्रुति - वेदग्रन्थ-कभीभी न बदलनेवाले प्रकृति के नियमों से निकाले हुए नीति के सिद्धान्त हैं। यदि हम ग्रन्थों की आज्ञाओं की वास्तविक दशा पर विचार करें तो हमे विदित होगा स्मृति-ग्रन्थानुसारी (समय के साथ चलने वाले) क्यों माने जाते हैं। एक राज नष्ट होकर दूसरा राज हुआ या एक

प्रकार का राज्य-शासन बदलकर उसके स्थानमें दूसरे प्रकार का शासन जब शुरू होता है, तब पहले कानून बदलकर दूसरे चल पड़ते हैं। वर्तमान समयमें दसहजार वर्ष पूर्व के नियमों के अनुसार न्याय पाने की यदि कोई इच्छा करे तो वह मूर्खता होगी। यही बात उनके लिए भी चरितार्थ होगी जो कहेंगे कि आज कानून के संसार के अन्त तक बदले न जाँय। वर्तमान समय के कानून केवल अपराधोंका विवरण करते हैं और स्मृतिग्रन्थों में अपराधों के विवरण के साथ धर्म के दूसरे अंगों का विचार है। ऐसा होनेपर भी उपर्युक्त बात में बाधा नहीं आती क्यों कि इससे मुख्य विचार में फरक नहीं होता। इससे मालूम होगा कि परिस्थिति में परिवर्तन होनेसे स्मृति में भी बदल होनेका क्या कारण है। इसी तरह कभीभी न बदलने वाले सृष्टि के नियमोंके आधार पर से नीति के सिद्धान्त बने हैं, जिन्हे दूसरे प्रकार से इस तरह कह सकते हैं: आध्यात्मिक, आधिदैविक तथा आधिभौतिक तीनों में दिखनेवाले सामान्य सिद्धान्त ही वैदिक सिद्धान्त हैं। वे कभीभी नहीं बदलते। 'ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्रादि चार वर्ण राष्ट्र पुरुष के भिन्न भिन्न अंग हैं।' यह वचन वेदिक है इससे वह अबाधित है। इसी का अनुवाद स्मृति में हुआ हो तो भी उस में फरक कुछ नहीं होता। राष्ट्र के सब लोग एक ही शरीर के अंग हैं इस भावना को मुख्य समझकर भिन्न भिन्न समय में भिन्न भिन्न स्मृतियां बनाई जावें तो वे स्मृतियां उस काल के लिए कामयाब होंगीं। परन्तु इन स्मृतियों को वेद के वाक्य के समान जोर और चिरस्थायिता कभी नहीं आसकती। इन्हीं बातों का विचार करके ग्रन्थों के प्रमाणों का विचार किया जावे।

धर्मशास्त्र के अनेक ग्रन्थों में विरोध है। कई धर्मग्रन्थों में इस प्रकार के सुधार के विरुद्ध ही बहुत वचन मिलेंगे।

साधारणतः ग्रन्थ जितना अधिक अर्वाचीन होगा उतना अधिक वह इस सुधारका विरोध करेगा। धर्मसिंधु निर्णयसिंधु आदि ग्रन्थ बिलकुल अर्वाचीन हैं (इन ग्रन्थों के विषय में स्वामी विवेकानंदजीने कहा था कि 'ये ग्रन्थ रद्दी कागज की कीमत के भी नहीं हैं।) इन ग्रन्थोंमें छूत-अछूत के विचारों को तथा बहिष्कार को मुख्य स्थान मिला है। परन्तु ग्रन्थ जितना प्राचीन होगा उतना ही वह अपना अधिक सहायक होगा। प्राचीन समय के धर्मशास्त्रकारों ने इन सुधार के विचारों को उत्तेजना ही दी है। आपस्तंब सूत्रकारोंने जाहिरतौर पर इजाजत दी है कि 'द्विजों के घर शूद्र भोजन बनावें' इस प्रश्न के संबंध में यदि हम प्राचीन धर्मग्रन्थोंके वचन अधिक आदरणीय समझें, तो विरोध घट जावेगा और प्रतिस्पर्धका बल भी कम होगा। अर्वाचीन ग्रन्थोंकी अपेक्षा प्राचीन धर्मग्रन्थ अधिक आदरणीय एवं प्रमाण हैं। यह बात हमही पहले पहल नहीं बताते। यह बात तो सब शास्त्रकारोंने मान ली है और बूढे लोग जो रूढिके अनुकूल आचरण रखते हैं, इस बात को मान लेंगे। बात सच है कि (१) वेदके अनुकूल ग्रन्थों का आधार तथा (२) अर्वाचीन ग्रन्थों की अपेक्षा प्राचीन ग्रन्थों का अधिक आदर ये दो बातें मान लेनेसे बाधाएं कम होंगीं। परन्तु इतना करनेही से रास्ता बिलकुल साफ न होगा। इसलिए अब देखें उपर्युक्त बातें मान लेनेपर कौनसी बाधाएं आवेंगीं।

(२) ऐक्य की दूसरी बातोंमें रोटी-व्यवहार तथा बेटी-व्यवहार समानता की एकता के लिए अधिक आवश्यक हैं। हिन्दुओं के सदृश मुसलमानोंमें भी बहुत जातियां हैं, परन्तु उनमें से बहुतेरी जातियोंमें परस्पर रोटी-व्यवहार तथा बेटी-व्यवहार होता है। इसलिए उनका जातिभेद इतनी तीव्रतासे खटकता नहीं जैसे

कि हिन्दुओंका । इससे कहना आवश्यक हो जाता है कि परस्पर प्रेम तथा सहानुभूति दर्साने के कई साधनों में से दो मुख्य साधन रोटी-व्यवहार तथा बेटी-व्यवहार हैं। इसी लिए हम पहले अन्न-व्यवहार के संबंधमें लिखेंगे। त्रैवर्णिकों में आपसी रोटी-व्यवहार जाहिरा तौर पर होता रहा है। प्राचीन ग्रन्थोंमें इस संबंध के कई प्रमाण मिलते हैं। देखिये-

नान्यत्र ब्राह्मणोऽश्नीयात् पूर्वं विप्रेण केतितः।
यवीयान् पशुहिंसायां तुल्यधर्मा भवेत् स हि ॥ ४३ ॥
तथा राजन्यवैश्याभ्यां यद्यश्नीयात् तु केतितः ॥
यवीयान् पशुहिंसायां भागार्धं समवाप्नुयात् ॥ ४४ ॥
दैवं वाप्यथवा पित्र्यं योऽश्नीयाद् ब्राह्मणादिषु।
अस्नातो ब्राह्मणो राजन् तस्याधर्मो गवानृतम् ॥ ४५ ॥
अशौचो ब्राह्मणो राजन् योऽश्नीयाद् ब्राह्मणादिषु।
ज्ञानपूर्वमथो लोभात् तस्याऽधर्मो गवानृतम् ॥ ४६ ॥

—महाभारत अनु० अ० २३

अर्थात् "ब्राह्मण के घरका निमन्त्रण आनेपर यदि कोई ब्राह्मण दूसरे स्थान में भोजन करे तो वह पाप का भागी होता है। जो ब्राह्मण क्षत्रिय तथा वैश्य का निमन्त्रण आने पर (वह अन्न ग्रहण करने के बाद) दूसरे स्थान में भोजन करता है वह आधे पाप का भागी होता है। जो ब्राह्मण विना स्नान किये ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य के घर दैव वा पैत्रिक कर्म में भोजन करेगा वह पाप का भागी होगा। अशुद्ध ब्राह्मण ज्ञानपूर्वक अथवा लोभ के कारण ब्राह्मणादि के घर यदि भोजन करेगा तो वह पाप का भागी होगा।"

महाभारत के इस वचन से सिद्ध होता है कि त्रैवर्णिकों का

परस्पर अन्न-व्यवहार था। ऊपर लिखा है कि क्षत्रिय तथा वैश्य निमन्त्रण स्वीकार करने पर ब्राह्मण को दूसरे किसी के घर भोजन न करना चाहिये और भोजन करना हो तो वह स्नान करके शुद्ध होकर ही करना चाहिये। इस आज्ञा से स्पष्ट प्रमाण पाया जाता है कि उस समय त्रैवर्णिकों का परस्पर रोटी व्यवहार अप्रतिबद्ध था। अब बचे दो वर्ण-शूद्र और निषाद। इन दो में से निषाद जंगली होने के कारण छोड दें तो देश के लोगों में से केवल शूद्र वर्ण बचता है। जो लोग ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य नहीं हैं, जो निषादों में शामिल नहीं हैं वे हिन्दु जातियाँ शूद्र वर्ण की मानी जाती हैं। यद्यपि चातुर्वर्ण्य की संस्था सारे संसार में विद्यमान है, तब भी हम उसका विचार केवल हिन्दुओं की दृष्टिसे करते हैं। सब शास्त्र यही कहते हैं कि शूद्र का काम परिचर्या करने का है। इसलिये यदि शूद्रों में से कुछ लोग बहिष्कृत हों तो वे सेवक किस प्रकार हो सकते हैं। शूद्र वर्ण सेवकों का वर्ग है इससे वह छूत अवश्य होना चाहिये। आपस्तंब सूत्रकार का कथन है कि शूद्रों को चाहिये कि वे द्विजों की देखभाल में उन्हो के घर रोटी बनावें। इस कथन से हम निःशंकता से कह सकते हैं कि शूद्र का पकाया हुआ भोजन द्विजों के लेने योग्य होता था। ब्राह्मण क्षत्रिय, तथा वैश्यों के घर नौकर रहकर उनकी रसोई बनाना तथा उनके घर का दूसरा काम करना, यह शूद्रों के काम की प्रथा बहुत प्राचीन कालसे चली आती है। इससे शूद्र-स्पृष्ट अन्न का निषेध आप-स्तंब के बाद का होना चाहिये। इतना स्पष्ट है कि आपस्तंब के पूर्व के समय रोटी व्यवहार में छूत अछूत का दोष नहीं था।

अब प्रश्न यह है कि "शूद्रान्न वर्ज्य है" इस वचन का, जो कि कई ग्रन्थों में मिलता है, क्या मतलब? शूद्रान्न वह अन्न है

ओं शूद्रोंके घर, शूद्रोंके खाने योग्य होता है और जिसे शूद्र ही पकाते हैं। ऊपर लिखे निषेध का अर्थ है कि इस शूद्रान्न का सेवन द्विज न करें। इसका यह अर्थ नहीं कि शूद्रों द्वारा द्विजों के घर पर पकाया भोजन भी त्याज्य है। अन्न के मुख्य तीन भाग हैं: द्विजान्न, शूद्रान्न और पिशाचान्न। दूध, धान की लाई, घी आदि सात्विक अन्न द्विजान्न है। और "शूद्रान्नं रुधिरम् स्मृतं" रुधिरयुक्त अन्न को शूद्रान्न कहते हैं।

यक्षरक्षः पिशाचान्नं मद्यं मांसं सुरासवम् ॥

-महाभारत।

अर्थात् 'मद्य, मांस, सुरा और आसव पिशाचान्न है।" शूद्रान्न और पिशाचान्न दोनों द्विजों के लिये त्याज्य हैं इतनाही नहीं किन्तु शूद्रोंको भी वे अन्न लेना मना है। पहले लिख दिया गया है कि गोरस, स्नेहपक्व आदि चीजें शूद्रों के घर बनाई जाने पर भी ग्राह्य हैं। इन सब का सारांश यह कि (१) शूद्रों के घर बना हुआ शूद्रान्न द्विज ग्रहण न करें (२) द्विजों के घर बना हुआ द्विजान्न सब लोग खा सकते हैं। प्राचीन ग्रन्थों में अन्न-व्यवहार में छूत अछूत का दोष नहीं पाया जाता। यह दोष आधुनिक ग्रन्थों में दिख पडता है। किन्तु प्राचीन ग्रन्थों के सामने इन ग्रन्थों का प्रमाण माना नहीं जा सकता। कन्या-व्यवहार की बात इसी प्रकार की है। श्रेष्ठ वर्ण को दूसरे सब वर्णों की कन्याओं से विवाह करने की आज्ञाएँ थीं। इसके प्रमाण पिछले पृष्ठों में आगये हैं। इन दोनों बातों में प्राचीन ग्रन्थों के मत अनुकूल तथा उदार हैं। सभी ग्रन्थों में ऊँचे वर्ण की कन्या नीचे वर्ण से व्याहने का निषेध किया गया है। इस नियम का पालन कडी रीतिसे करके भी यदि सब वर्ण प्राचीन प्रथा के अनुसार सब वर्णों की कन्याओं से विवाह

करने की प्रथा शुरू करें तब भी उच्च वर्णों के द्वारा किया हुआ नीच वर्णों का बहिष्कार बहुत कुछ घट जावेगा।

(३) यहाँ एक बडी भारी अडचन ' कलिवर्ज्य ' प्रकरण की आवेगी। पीछले दो हजार वर्षों से यही प्रयत्न निश्चित पद्धति के साथ किया जा रहा है कि जो जो उदार मत या जो जो समानता के सिद्धान्त प्राचीन ग्रन्थोंमें प्रगट किये गये हैं उन्हे कलिवर्ज्य प्रकरणमें डालकर क्रमशः संकुचित बनाना। यद्यपि यह प्रयत्न कई दिनोंसे जारी है, तब भी उसे स्पृहणीय नहीं कह सकते। आधुनिक लेखकों को उचित नहीं कि वे प्राचीन ग्रन्थकारों के विचार-प्रवाह में कलिवर्ज्य प्रकरण की रुकावट डालकर उनके लेखों का विपरीत अर्थ करें। इस कलिवर्ज्य प्रकरण को पढने के समय इस बातपर अवश्यही ध्यान देना चाहिये कि यह प्रकरण मूल ग्रन्थ-कर्ता का लिखा है वा किसी दूसरे लेखकने उसे मूल ग्रन्थमें घुसेड दिया है। यदि वह पीछे के लेखकोंने लिखा हो या पीछेके समालोचकोंने जबरदस्तीसे लाद दिया हो तो वह आदरणीय न माना जावे। एक ग्रन्थ-कर्ता के मत के अनुसार दूसरे ग्रन्थ-कर्ता के मतका इस प्रकार नियमन उचित नहीं। यदि ग्रन्थों का निरीक्षण इस दृष्टिसे न किया जाय तो सब ग्रन्थोंमें गोता लगाने से जो कुछ हाथ लगेगा वह सब इस अत्यन्त व्यापक और निराधार कलिवर्ज्य में डूब जावेगा। आधुनिक समालोचकोंकी समालोचना के पट को खोलकर मूल ग्रन्थके आशय पर ध्यान दें और ग्रन्थ के मुख्य मुख्य सिद्धान्तों के ऐक्य की चलनी से गौण तथा प्रक्षिप्त वचनों को छान कर अलग कर दें, तो आधुनिक ग्रन्थोंमें भी कई उदार मत मिलेंगे।

आधुनिक समालोचकों को और ग्रन्थ-कर्ताओंको 'कलिवर्ज्य' प्रकरण का आवरण जहाँ तहाँ डालनेकी आवश्यकता होती है।

और उस आवरण के नीचे वहुतेरे समानता के सिद्धान्त दवा देने की आवश्यकता होती है। इससे एक वात स्पष्ट रीतिसे सिद्ध होती है कि कलिवर्ज्य प्रकरण की महत्ता वढने के पूर्व के समय धर्म ग्रन्थ कई उदार मतों का प्रचार करते थे। पिछले दो हजार वर्षोंसे सनातन धर्मके स्वच्छ सूर्य को इस असमय अभ्रों ने ढाँक दिया है। इससे इन वादलोंको विवेक-वायु से दूर भगाकर, उस धर्म-सूर्य के विमल-प्रकाश में चारों वर्णों को और पंच मानवों को मिल-जुलकर संचार के लिये तत्पर रहना चाहिये। और परस्पर आश्रय देकर उन्नति के अत्युच्च शिखरपर आरोहण कर, अपने क्षितिज के वृत्तका विस्तार करना ही उचित है।

धर्मग्रन्थों के वचनों में वाधा डालनेवाली अडचनों को इस प्रकार दूर करने के वाद हमे आवश्यकता इस वात की है कि हम उन अडचनों का विचार करें जो धर्म में नहीं हैं किन्तु रूढिमें हैं। छूत अछूत को दूर करने में वूढों की ओर से रुकावट आने की संभावना अधिक है। ये अडचने अधिकार से कहे हुए इन शब्दों में हैं कि 'हमारे ख्याल में तो यही बात होनी चाहिये' और 'आज दिन तक यही प्रथा चली आई है'। इससे अब हम उन अडचनों का विचार करेंगे जो 'शास्त्रात् रूढि-र्वलीयसी' के अमोघ शस्त्र के वलपर उपस्थित होने वाली हैं।

(४) अभी समाज में पुराने विचार ही प्रवल हैं। कुछ शिक्षित लोग भी अपना मान वढाने की अभिलाषा से या लोकच्छन्दा-नुवर्तित्व से समाज में प्रचलित कुप्रथाओं का समर्थन करते हैं। विवेकको दूर कर इस प्रकार वक्र-मार्गसे चलना सर्वदा गर्हणीय है। विचार-क्रान्ति के सन्धिकाल में इस प्रकार के कार्य होना अपरि-

हार्य है। हजारों वर्षों के विचारों में एकाएक परिवर्तन नहीं हो सकता और ऐसा परिवर्तन इष्ट होनेपर भी होना कठिन है। इसलिये इस संधिकाल में अड़चनें अवश्यही आवेंगी। किसी का भी मुँह कानून से बन्द कर देना उचित नहीं। इस प्रकार की परतन्त्रता सदैव निन्दनीय है। इस लिये इसका एकमात्र उपाय यही है कि इन सुधार—भीरु लोगों की रुकावटों से न डर काम करना और अपनी नांव को आगे बढाते जाना। ये लोग प्रचलित प्रथाओं का मंडन करते करते रहेंगे और प्रतिगामी रुढि की निरुपयोगी तथा हीन रीतियों का खंडन युक्तिवाद से सुधार-प्रिय लोग स्पष्ट शब्दोंसे करेंगे और साथ ही यह भी बतलावेंगे कि इन कुरीतियों के बदले में कौन रीतिय होनी चाहिये। दूसरे देशों की स्थिति प्राचीन आर्यों की परि-स्थिति और वर्तमान समयकी अवनति का सच्चा स्वरूप लोगों को जैसे जैसे दिखेगा वैसे ही वैसे विद्युत् के नियमों के आधार पर किया हुआ कुरीतियों का मंडन नीरस और निरादरणीय होता जावेगा। सारांश यह कि प्रगति के इच्छुक लोगों में वह सामर्थ्य होना चाहिये जिससे वे हीन रीति-रस्मों का समर्थन करनेवालों से युक्ति के बलसे, शांततासे शाब्दिक प्रतिवाद कर सकें। उपर्युक्त अड़चन दूर करने के लिये इतना उपाय काफी है।

यह बात ज्ञानी लोगों की है। सुधार के कामों में रुकावट डालने वाला और उसका विरोध करनेवाला साधारण जन-समाज ही रहता है। इन लोगों के सन्मुख यदि कोई बात युक्ति से सिद्ध करने की कोशिश की जावे तो वे इन लोगों को नास्तिक और तर्कटी कहेंगे। एकबार यदि वे नवीनों का यह नाम रख दें तो वे इनका कहना कभी भी नहीं सुनते। और यदि सुन भी लें तो वे

कह देते हैं कि " ये सुधारक सब-गोलंकार करने के लिये उद्यत हैं। पुरखाओं ने अन्त्यजों को दूर रखा वह क्या बिना कुछ सोचे समझे ही? अब ये लोग उनसे भी ज्ञानी बनकर हमे सिखाने आये हैं। " वे लोग इस प्रकार के संकुचित विचार प्रगटकर जो कुछ सुना था उसे बिलकुल भूल जाने की कोशिश करते हैं। हमारे हिन्दु समाज में इसी तरह के लोग अधिक हैं। विद्यादान से इन लोगों में विचार जागृति हुए बिना इन लोगों का विश्वास हो नहीं सकता। अवनति के सब रोगों पर विद्या-दान रामबाण का काम करता है। अन्त्यजों का बहिष्कार हटाने में और छूत अछूत के विचारों में परिवर्तन करने के लिये विद्या का प्रचार ही अधिक लाभदायक होगा। यह काम सरकार तथा लोग दोनों की ओर से जोरशोर से होना चाहिये। परन्तु जबतक यह काम जोरशोर से शुरू नहीं हुआ तब तक इन विचारों को जो शास्त्र के वचन हैं उनके अर्थ को स्पष्ट कर छोटी छोटी पुस्तकें अल्प कीमत में देना चाहिये या मुफ्त बांटी जानी चाहिये। लोगों को मालूम होना चाहिये कि शास्त्र के वचन क्या हैं, शास्त्र की आज्ञाएँ क्या हैं और रूढि के कारण कुसंस्कार किस प्रकार बढ गये हैं। शास्त्रों की आज्ञाएँ उदार हैं और रूढि में हीन विचार ही प्रबल हैं यह बात पुस्तकों के प्रचार से लोग जान सकेंगे। रूढिनियम ही शास्त्र है इस विपरीत समझ को अलग करनेके लिये इसी प्रकार का प्रयत्न होना आवश्यक है। यदि समाज प्राचीन शास्त्रों की मर्यादा तक सुधार करने के लिये तैयार हो जावें तब भी बहुत काम हो जावेगा। व्याख्याता ओं को चाहिये कि वे स्वतंत्रता से विचारों को न भटकने देकर केवल वहीं तक सुधार करनेके लिये लोगों से कहें जहाँ तक कि शास्त्र की आज्ञा है। इससे अधिक लाभ होगा। सारांश यह कि इस मार्ग में पहला प्रयत्न

यह होना चाहिये कि लोग रूढिबंन्धन से मुक्त होकर प्राचीन शास्त्र की अधिक उदार आचार-पद्धति के अनुसार व्यवहार करने लगें। यह बात सध जानेपर इसके आगे की बातें सधना सहज हो जावेगा। "(१) विद्यादान, और (२) शास्त्रमतप्रचार" इन दो उपायों से जनता के अज्ञान से उत्पन्न होने वाली अडचनें दूर करनी चाहिये ।

(५) अब एक एक आखीरी किन्तु महत्व की अडचन रही। वह अडचण इस प्रकार की है कि सूज्ञ लोग जिन लोगों का सुधार करने की इच्छा करते हैं उन अन्त्यजों में इस प्रकार की इच्छा अभी तक उत्पन्न नहीं हुई। वे समझते हैं कि हम लोग जन्मसे ही नीच हैं। इस जन्म में हम लोगों का उद्धार हो नहीं सकता। उन लोगों की यह समझ हजारों वर्षों के कुसंस्कारों का फल है। और इसी लिए वे समझते हैं कि उच्च वर्ण के लोगों के अधिकार किसी भी उपाय से प्राप्त हो नहीं सकते। उन्हे यदि कहा जावे तो वे विश्वास ही न करेंगे वलिक यह समझेंगे कि इस प्रकार की बातें करनेवाला खदही धर्म की दृष्टि में गिरा हुआ है। मान लीजिये कोई एक ब्राह्मण है। उसने अपना जीवन अन्त्यजों के उद्धार में समर्पण कर दिया है। वह अन्त्यजों के मुहल्ले में जाकर यदि उन्हे इस विषय में उपदेश करे, तो उस- अपने उद्धार के लिए स्वार्थत्याग करनेवाले-उच्च वर्णीय के वे अहसान मंद होंगे। तब भी वे, इस स्वार्थ-त्यागी महानुभाव को उन उच्च वर्ण के लोगों की अपेक्षा जो अन्त्यजों को बहिष्कृत मानते हैं नीच समझेंगे। उनके मनपर परंपरासे हुए कुसंस्कारों का यह फल हुआ है वे समझते हैं, अपने साथ संबंध रखने से उच्चवर्ण के लोग धर्महीन बनते हैं। जो मनुष्य अपने पैरों के बल खडे रहना नहीं चाहता उसे दूसरे सौ मनुष्य भी खडा नहीं कर सकते। इन

अन्त्यजों के विषय में यही बात होती है। उन्ही लोगों को उन्नति जल्द हो सकती है जिन्हें यह बात पूर्णतया मालूम हो गई है कि हम लोग उन्नति कर सकते हैं या हमें उन्नति करनी चाहिये, तथा हमारी वर्तमान दशा बहुत खराब है। परन्तु जिन्हे उन्नति की इच्छा नहीं, जो अपने निसर्ग सिद्ध हकों को पहिचानते नहीं व जो नहीं समझते की हमारी हालत बहुत खराब है, इतना ही नहीं बल्कि जिन लोगों का यह दृढ विश्वास है कि हम लोग नीच हैं और ऐसेही रहेंगे, ऐसे लोगों की उन्नति करना बड़ा कठिन काम है। इन लोगों की ऐसी मानसिक स्थिति है इसीलिये इनके उद्धार की कोशिश कड़े परिश्रमसे, अध्यवसाय से और एकतासे होनी चाहिये। यदि ये लोग अपने हकोंको जानने लगें तो वे उन्हे प्राप्त करने की कोशिश खुद ही करेंगे। जब तक ऐसा नहीं हुआ है तब तक उनकी मनो-भूमि में ऊँचे विचार के बीज बोना अत्यन्त आवश्यक है। यह कदापि उचित न होगा कि काम करनेवाली व्यक्ति इस स्वार्थ की और संकुचित बुद्धि से काम करे कि वे हमारा आदर हमेशा करें, हमेशा हमे श्रेष्ठ समझें, सदा हमारे अहसान-मंद रहें और सर्वदा हमारी गिनती महन्तों में करें, इस पवित्र कार्य के करने के लिये उन्ही कर्मवीरों की आवश्यकता है जो किसी भी प्रकारका पारितोषिक या बदला लेना नहीं चाहते, किन्तु वे जिन लोगोंका उपकार कर रहे हैं उनसे सताये जाने पर भी उसकी पर्वाह न कर अपना कर्तव्य करते ही जावेंगे। इस प्रकार की अड़चने वास्तव में अड़चने नहीं हैं। वे यह परखने की कसौटियाँ हैं कि कार्य-कर्ताओं में कौन सच्चा और कौन जी चुरानेवाला है।

इन पीछे पड़े लोगों में विद्याका प्रसार जैसे जैसे अधिक होगा, जब वे प्रत्यक्ष देख लेंगे कि स्वच्छता से रहने के कारण उनकी

स्थिति सुधर गई है, जब वे देखेंगे कि नवीन सुधारों के कारण जो रुजगार चलाए गये हैं उनसे हमारी आर्थिक दशा सुधर गई है जब वे अनुभव करेंगे कि धर्म के उपदेश से उनकी आत्मा को शान्ति हुई है, तब वे अपने आपही स्व-जाति की उन्नति के लिये उच्च वर्ण के लोगों को मदद करेंगे। वह दिन बहुत ही थोड़े समय में आगे इस लिये आवश्यकता है दृढ़प्रतिज्ञ, कर्तव्य परायण काम करने वालों की।

भाग १३ वाँ

आधुनिक संस्थाओं का काम।

जातिभेद, अन्त्यजों का वहिष्कार, छूत अछूत आदि बातोंमें परिवर्तन होने की आवश्यकता है; बहिष्कृतों को शुद्ध कर उन्हे ऊँचे उठाना चाहिये; पिछडे हुओं को आगे लाना चाहिये; इस प्रकार के विचार देश में शुरू होकर आधी शताब्दी बीत गई। इस बीच में कई समाज और संस्थाएँ अपना अपना विशेष कार्य करने के लिये तत्पर हुई। इन समाजोंने क्या काम किया सो अपन देखें-

थिऑसफी।

(१) थिऑसफी —यह ब्रह्मविद्या का विचार करनेवाली संस्था है। इसका नाम भी 'ब्रह्मविद्यामंडल' है। उपनिषद्‌की ब्रह्म-विद्या के सब सिद्धान्तों को यह संस्था मानती है। इस संस्था का उद्देश है कि सब धर्मों के ग्रन्थों में आध्यात्म-विद्याके जो गुप्त सिद्धान्त हैं, उन्हे प्रगट करना, और उनको भौतिक शास्त्र के सिद्धान्तों द्वारा समझा देना। इस संस्था के मुख्य सिद्धान्तों में से एक सिद्धान्त है आध्यात्मिक उन्नति का साधन विश्वकुटुंबित्व। इस संस्था की रचना ऐसी है कि जिससे, विश्ववन्धु द्वारा स्थूलरूपसे होनेवाला ऐक्य और अद्वैत आत्मज्ञानसे सूक्ष्म रूपसे होनेवाला ऐक्य, दोनो प्रकार से एकता होवे।

इस संस्था के तत्त्व ऐसे उच्च हैं। किन्तु संस्था के मूल सिद्धान्त विश्वबन्धुता का होने पर और अद्वैत आत्मतत्त्व का शाब्दिक ज्ञान होने पर भी थीऑसफी के सदस्य आपस में अन्नव्यवहार तथा कन्या-व्यवहार करने के लिये बन्धे नहीं है। इतनाही नहीं

किन्तु यदि ब्राह्मण, अन्त्यज, ईसाई तथा मुसलमान ऐसे चार मनुष्य थिऑसफी के सदस्य हों, तो वे एक दूसरे को अछूत मान सकते हैं। थिऑसफी का ब्राह्मण सदस्य अपने अन्त्यज बन्धु को चाहे तो स्पर्श भी न करेगा। तब अन्न, उदक ग्रहण करना दूर ही है। यह संस्था अपने सदस्यों को विचार-सृष्टि का विश्वबन्धुत्व कृति में लाने के लिये बाध्य करतीही नहीं। बल्कि हिन्दुओंकी जातियों को छूत अछूत विद्युत् तथा चुंबक की शक्ति द्वारा सिद्ध करने की कोशिश करती है जैसा कि हिन्दुओं ने भी नहीं किया था। ब्राह्मणों के शरीर की उच्च मानसिक विद्युत का संयोग यदि अन्त्यज के शरीर की हीन विद्युत् के साथ होवे-अर्थात् यदि ब्राह्मण और अन्त्यज एक दूसरे को स्पर्श करें-तो एक अजीब किस्म का परिवर्तन शरीर में होता है। इसलिये इस संस्था का कथन है कि ऊंच वर्ण के मनुष्य को नीच वर्ण के मनुष्य का स्पर्श न होना चाहिये। हिन्दुओं का जातिभेद आत्मा की उन्नति की सीढियाँ बताता है। अन्त्यजों की आत्मा नीच श्रेणी की है और ब्राह्मणों की ऊँचे श्रेणी की है। इसलिये उनके शरीर की विद्युत् की तीव्रता भिन्न भिन्न प्रकार की रहती है। शरीर एक प्रकारका विद्युत्-वाहक यन्त्र (बैटरी) है। इससे उच्च विद्युत् शक्ति वाला ब्राह्मण यदि हीन विद्युत् वाले अन्त्यज से मिल जुलकर रहे तो उसकी आत्मिक उन्नति में बडा धक्का लगेगा और दोनों का नुकसान होगा। अन्न, उदक लेने में भी यही तर्कना लडाई जाती है। इसी तर्कना के आधार पर यह संस्था हिन्दुओं को हर प्रकार की छूत अछूत का समर्थन करती है। इसी लिये यद्यपि सारे संसार भर में थिऑसफिस्ट लोग हैं, और हिन्दुओं को छोडकर दूसरे सब थिऑसफिस्ट आपसमें रोटी व्यवहार करते हैं, तब भी हिन्दु थिऑसफिस्ट आपस में रोटी व्यवहार नहीं करते और न वे दूसरे देशवाले

थिऑसफिस्टों सेही रोटीव्यवहार करते हैं।

यदि कोई कहे कि हम दूसरों से स्पर्श व्यवहार भी न करेंगे तब भी यह बात मानकर वह मनुष्य इस संस्था के विश्व-बन्धुत्व में रह सकता है। इस प्रकार परस्पर विरोध बतलानेवाली बातों को व्यापनेवाली इस संस्थाकी घटना है। तब स्पष्ट ही है कि इस संस्थासे छूत अछूत के निवारण में और जाति विशिष्ट बहिष्कार के निकालने में कितनी सहायता मिल सकती है। इसके विपरीत इस संस्थाने अछूत की प्रथा को बढाने में ही अधिक सहायता पहुँचाई है। अच्छे अच्छे शिक्षित, उपाधि-धारी लोग भी उपर्युक्त तर्क-पद्धति के आधार पर जातिविशिष्ट अछूत और बहिष्कार का समर्थन और अवलम्ब-थिऑसफिस्ट होनेपर-दृढता से करने लगे हैं। दक्षिण के अन्त्यजों की पराया लोगों की-करुणास्पद स्थिति को देखकर जिनका हृदय फूल गया, ऐसे परलोक-निवासी कर्नल अल्काट साहबने उनके सुधार के लिये इसी संस्थाके मार्फत कोशिश शुरू की थी। उन्होंने प्रबन्ध किया था कि विद्या-ज्ञान, जो सब प्रकार की उन्नति का मुख्य साधन है, मुक्तहस्त से दिया जावे। हर्ष की बात है कि थिऑसफी के मार्फत अंन्त्यजों को शिक्षित करने के लिये कई पाठशालाएँ चलाई जाती हैं। कुछ काल बाद उन्हे अपने हकों के विषय में जागृति इसी विद्या-प्रसार से होगी और सब इष्ट सुधार हो जावेंगे। इस बातका निश्चय है। इससे अन्त्यजों को शिक्षित करने की कोशिश जोरशोर से करने के कारण थिऑसफी को धन्यवाद देना आवश्यक है।

देव-समाज।

(२) देव-समाज-सन् १८८७ में श्रीगुरुदेवभगवान् नामक एक महंत ने यह समाज पंजाब में चलाया। इनके चलाये हुए मत

को 'विज्ञानमूलक धर्म'(The science-grounded. religion) कहते हैं। "ईश्वर विषयक महा हानिकारक विश्वास" और 'the false belief in God नामकी दो पुस्तकें इस समाजने प्रसिद्ध की है। परमेश्वर नामकी कोई वातही नहीं है। भोका आत्मा और जगत् ये दोही वातें इस संसारमें हैं। इससे मनुष्योंने सामाजिक तथा राजनैतिक सुस्थिति और अपनी उन्नति के लिये आवश्यक नीतिनियमों के अनुसार वर्ताव करना चाहिये। इस समाज के मतों का प्रचार अधिकतर पंजाव, सिंध, तथा वलुचिस्थान में ही हुआ है। इस मत में मुसलमान भी आसकते हैं। इससे स्पष्ट है कि इस मत के लोग छूत अछूत नहीं मानते। १९०५ में देवसमाजियों की सभा लाहोर में हुई थी। इस सभाका चौथा प्रस्ताव नीचे लिखा है। उस प्रस्ताव से पता चलता है कि इस मतके लोगों के छत अछूत के सम्वन्ध में क्या विचार हैं। देखिये —

Resolution IV—"Inter-marriage and Inter-dining" Resolved that this Conference, of Dev-Samaj Considers inter-dining and suitable inter-marriage among higher (Dwij) Castes of Hindus very benificial in the interest of union in the Hindu Nation and always tries to inculcate and support this principlle"

(अर्थात् देव-समाज की प्रवल इच्छा है कि हिन्दुओं की ऊँच जातियों में परस्पर रोटी-व्यवहार और वेटी-व्यवहार की प्रथा चल पडे। इस प्रथा से हिन्दुओं में ऐक्य भाव की वृद्धि होगी। इससे यह समाज इस प्रथा के प्रचार की कोशिश सर्व काल करेगा।)

इसी सभा का छठवाँ प्रस्ताव इस प्रकार है—

" Resolution VI— " Raising the low Castes"— Resolved that this Conference of Dev-Samaj deems it necessary and proper to raise the low cast Hindus and to help in their Social, Educational and Moral advancement."

(अर्थात् इस सभाका मत है कि हिन्दुओं की नीच मानी हुई जातियोंका सुधार और उनकी सामाजिक, शिक्षा सम्बन्धी तथा नैतिक उन्नति करने में मदद पहुंचाने की अब अत्यन्त आवश्यकता है " Views of Dev-Samaj on social problems " नाम की पुस्तक पृष्ठ ५ और ८) इन प्रस्तावों से स्पष्ट होता है कि देव-समाज छूत-अछूत का विरोधी था।

देवसमाज में जो लोग शामिल किये जाते हैं वे इसलिये नहीं कि वे उच्च जाति के हैं किन्तु इस सिद्धान्त के अनुसार कि वे नीतिमान् होने चाहिये और उनकी इच्छा आगे भी इसी प्रकार रहनेको होवे। देखिये- " जो अनुचित लोग घमंड और पक्षपात से रहित होकर सद्भाव और श्रद्धा के साथ हमारी समाज के उच्च आत्माओं की संगति करते हैं, और समाज के नियमानुसार अन्य कर्तव्योंके भिन्न दश प्रकार के निर्दिष्ट पापोंसे विरत होकर आगे के लिये भी उनसे बचे रहने की प्रतिज्ञा करते हैं, वह देवसमाज के सेवकों की सबसे नीचे की श्रेणी में प्रवेश करने के अधिकारी होते हैं। " (' देवसमाज की शिक्षा, प्रवेश विधि और कार्य ' पृष्ठ ११) इससे ज्ञात होता है कि जो मनुष्य दशनीति नियमोंका पालन करता है वह इस समाज का सदस्य बन सकता है। इसी सहूलियत से लाभ उठाकर कई मुसलमान भी इस समाज के सदस्य बन गये हैं। दशनीति नियमों के सिवा जो दूसरी प्रतिज्ञाएँ

करना आवश्यक है उनमें छठवीं प्रतिज्ञा इस प्रकार है।

"(6) I shall not observe such distinction Caste as are improper and harmful."

(अर्थात् जातियोंका भेद हानिकारक तथा अयोग्य है इससे मैं उसे न मानूंगा।) इस समाज ने क्या काम किया है यह लिखते समय इस प्रकार लिखा है -

(7) Inter-Caste marriages and dining with all Classes of Hindus is encouraged.

(हिन्दुओंकी भिन्न भिन्न जातियों में भोजन और कन्याका व्यवहार करने में उत्तेजन दिया गया है।)

इससे मालूम होता है कि देवसमाज जातिभेद और छूत अछूत नहीं मानता। इस समाज का साधारण जनता की उन्नति के लिये शिक्षा का प्रचार करना प्रशंसनीय है।

ब्रह्म समाज।

(३) ब्रह्मसमाज- ब्रह्मसमाज की दो शाखाएँ हैं आदि-ब्रह्म-समाज और साधारण ब्रह्म-समाज। इनमें पहली शाखा कुछ पुराने विचारों की है और दूसरी शाखा उदार मतोंका प्रचार करनेवाली है। ब्रह्मसमाज जातिभेद और छूत अछूत नहीं मानता। जातिभेद के विषय में उस के विचार इस प्रकार हैं-

All men are equal and God is our Common father. The morning Sun shines upon the palaces of kings as well as on the hovels of the poor. The air blows for all. Since He is the only father of mankind, there can be no such distinctions as Brahmins, Shudras,

Chandalas etc. To divide men into Classes like these is sin against God. (देखिये Brahmoism पृष्ठ १०)

(सब मनुष्य समान हैं और हम सब लोगों का समान पिता परमेश्वर है। सूर्यप्रकाश सब पर एकसा गिरता है और हवा भी सबपर एकसी है। वह सब लोगोंका एक ही पिता है इससे मनुष्यों में ब्राह्मण, शूद्र, चांडाल आदि भेद नहीं हैं। इस प्रकार मनुष्योंके भेद मानना पाप है।)

स्पष्ट ही है कि जिस समाजने इस प्रकार जातिभेदको उठा दिया और उसे पूर्ण रूपसे आचरणद्वारा बता दिया, उस समाज द्वारा अन्त्यजों का वहिष्कार होना सम्भव नहीं है। और भी देखिये-

" 19 th. We look upon Cast and every other form of denial of Social or individual rights, by individuals or classes, as impious and reprehensible and as such a proper field of unceasing moral warfare for all true lovers of God."

" 20 th. In accordance with the above spirit we look upon the Church as essentially a family of brothers and sisters, and as such a Common-wealth in the strictest sense of the term: where the abuse or mis-appropriation of power by one or a few is unfair ungodly and condemnable-[the Principees of Brahmo Dharma.]

" व्यक्तिकी या जाति की जिन रीतियोंसे मनुष्यके सामाजिक या व्यक्तिगत अधिकार की ओर लापर्वाही हो जाती है उन जातिभेद या तत्सदृश रीतियोंको ब्रह्मसमाज अधार्मिक और पापयुक्त समझता है। इस लिये एकही ईश्वर पर प्रीति करनेवाले सब

मनुष्योंका कर्तव्य है कि वे नीतियुद्ध करके इन रीतियोंको दूर करनेका उद्योग सदैव करें। ब्रह्मसमाज सब मनुष्यों में भाई-बहिन का नाता मानता है। जो लोग यह न मानकर मनुष्यों में विषमता मानते हैं वे अयोग्य, अनीश्वरीय, तथा तिरस्कारणीय काम करते हैं।" ब्रह्म समाज का यह मत देखने से विदित होगा कि उसका विश्वकुटुम्बित्व किस प्रकारका है। उसमें छूत अछूत सरीखे भेदों को स्थान ही नहीं है। The Religion of the Brahmo samaj (ब्रह्म-समाज का धर्म)पुस्तकके नौवे भागमें नीचे लिखा बयान है:

" ... परमेश्वर पिता है। उसके लिये सब मनुष्य समान हैं। जाति ' रंग या वर्ग आदि भेद या ऊँच नीच के भेद- (जैसे कि जन्म से माने जाते हैं।) मनुष्यों में हैं ही नहीं ...इस प्रकार जन्म से भेद मानना पाप है। इसी लिये इस प्रकार के कोई भी भेद ब्रह्मसमाज नहीं मानता। ब्रह्मसमाज नहीं मानता कि जाति या व्यक्तिकी आनुवंशिक -स्थूल या सूक्ष्म दृष्टिसे श्रेष्ठता है। वह यह भी नहीं मानता कि अध्यात्म में कोई जाति श्रेष्ठ है। सब मनुष्यों के लिये उचित परिस्थिति में आत्मिक, बौद्धिक, नैतिक, और धार्मिक उन्नति करना शक्य है। बुद्धिमें जो जाति-विशिष्ट भेद आज दिखता है, वह अनेक शतकों के विषय और अज्ञानमूलक समाज-नियमों के कारण उत्पन्न हुआ है। उसे इसी तरह रहने देना पाप है। ब्राह्मण हो या चमार हो, मुसलमान हो या हिन्दु हो, काले रंग का नीग्रो हो या गोरे बदन का युरोपीयन हो.ब्रह्मसमाज की दृष्टि में सब समान हकवाले बन्धु हैं। जबतक सब लोक समान नहीं माने जाते तबतक परमेश्वर को ' पिता ' कहने का अधिकार किसीको नहीं है। हिन्दुओं में जाति उपजाति और उनके भी भेद, तथा उनके कारण उत्पन्न हुई अन्याय की रीतियाँ बढकर ऐसा सामाजिक अत्याचार हो रहा

है कि अब इस अन्याय को दूर करने के लिये समता और विश्व-बंधुता के उच्च सिद्धान्तों की ओर ध्यान न देना हानिकारक है। हिंदू की जाति की संस्था में बड़ा भारी दोष यह है कि वह उच्च गुण-कर्मों से बदलती नहीं। इस प्रकार जन्म से ऊँचा नीचापन मानना अन्याय है। ... और इस प्रकार का ऊँचा नीचा पन होना असंभव है—" इस प्रकार ब्रह्मसमाज के विचार ऊँचे हैं। पण्डित शिवनाथशास्त्री ने "Theism in India" पुस्तक में यह बताया है कि ब्रह्मसमाज के विषय में लोगों का क्या कहना है। उस समय वे कहते हैं:—

"...ask the Common shop-keeper of this city if he has ever heard of the Brahmo Samaj, his reason for despising the Brahmos and he will promptly reply—' these fellows dine with the sweeper and the shoe-maker.' Curiously enough our not believing Caste means all that." (Theism in India page 28)

[एक साधारण दुकानदार से जिसने ब्रह्मसमाज का नाम सुना हो, यदि पूछा जावे, तो वह ब्रह्मसमाजियों के प्रति तिरस्कार प्रगट करते हुए कहेगा, 'ये लोग भंगी के साथ और चमार के साथ भोजन करते हैं ! हम ब्रह्मसमाजी जातिभेद नहीं मानते इस से लोग ऐसा सोचते हैं।)

इसी एक लेखांश से सिद्ध होता है कि ब्रह्मसमाजी छूत अछूत और जातिभेद नहीं मानते। इस समाज ने अन्त्यजों के उद्धारके लिये कई स्थानो में के बडे सिल सिलेसे और कडे प्रयत्न जारी रखे हैं। नामशूद्र, परया, पंचम, धेड, चमार, चाण्डाल आदि बहिष्कृत लोगों में जाकर उन्हे विद्यादान करना धर्म का उपदेश देना और उन्हे दूसरे कई प्रकार से सहायता करना आदि काम जनता की निंदा:

पर ध्यान देते हुए विलक्षण तेजी से यह समाज कर रहा है। बंगालमें इस समाजने इन लोगों के सुधार के लिये अनेक पाठशालाएँ और अनेक धर्म-मंदिर बनाये हैं। और इसी काम के लिये अलग धर्मोपदेशक नियुक्त किये गये हैं। अन्त्यजों के उद्धार का काम योग्य मार्ग से सिलसिलेसे और निश्चय से करनेवाला यह समाज है।

प्रार्थना समाज।

(४) प्रार्थनासमाज-बंगाल में जिस समाज को ब्रह्मसमाज कहते हैं उसी को महाराष्ट्र में प्रार्थनासमाज कहते हैं। इन दोनों समाजों का उद्देश और सिद्धान्त तथा कार्य करने की पद्धति एक सी है। ब्रह्मसमाज के ऊपर बतलाये हुए सब प्रार्थना समाज मत के भी है। श्रीयुत वि० रा० शिंदे तथा द्वा० गो० वैद्य ने एक पुस्तक प्रसिद्ध की है जिसका नाम है "प्रार्थना समाज क्या बला है?" इस पुस्तक में इस समाज के सब सिद्धान्त विस्तार से बताये गये हैं। उसके पृष्ठ में लेखक कहते हैं 'जिसप्रकार सब धर्मोंके सम्बन्ध में हमारी (समता की) भावना है, उसी प्रकार सब मनुष्योंके विषय में है। हम लोगोंका मत कि मनुष्यों का स्वीकार उनके गुणों के अनुसार और त्याग दोषों के अनुसार होना चाहिये। सब मनुष्य एकही परमेश्वर के बालक हैं, इससे भेद भाव को छोडकर परस्पर बन्धुभाव से रहाना ही ईश्वर को पसंद है और वही मनुष्यों का कर्तव्य है। सम्पूर्ण मनुष्य जाति के सम्बंध में हमारा यही मत है। इससे प्रगट होगा कि प्रार्थनासमाज जातिविशिष्ट बहिष्कार का कैसा विरोधी है।

ब्रह्मसमाज या प्रार्थनासमाज की स्थापना पहले पहले बंगाल में राजा राममोहन राय ने १८३० में की। आगे चलकर महर्षि देवेन्द्र नाथ ठाकुर जी ने इसी को विस्तृत रूप दिया। इसके बाद

ब्रह्मानन्द केशवचन्द्रसेन जीने इसे लोकप्रिय बनाया और इसके सिद्धान्तों को संसारभर में फैलाया। महाराष्ट्र में डॉ. आत्माराम पांडुरंग तथा माननीय जस्टिस महादेव गोविंद रानडे आदि विद्वानोंने इसी समाज को जमाया। आजकल हिन्दुस्थान में डेडसौ से अधिक स्थानोंमें इस समाजका कार्य चल रहा है। रात्रिकी शालाएँ, निराश्रित सहायकारी मंडल, अन्त्यजोद्धार संस्थाएँ आदि कई अच्छी अच्छी संस्थाएँ इस समाज के द्वारा चलाई जाती हैं। शिक्षा का पवित्र कार्य दोनों समाज करते हैं। 'निराश्रित-साहाय्यकारी मंडली' का उद्देश इस प्रकार है- हिन्दुस्थान की महार, मांग, चमार, परया आदि नीच जातियों के लोगों को (१) शिक्षा देना, (२) काम सिखाना, (३) प्रीति और समता का बर्ताव सिखाना, (४) धर्म, नीति, आरोग्य और नागरिकता आदि उदार सिद्धान्तों का उपदेश देना तथा इसी के सदृश दूसरे साधनों से उनकी उन्नति में सहायता करना इस संस्था का उद्देश है। इसी उद्देश की पूर्त्ति करने का प्रयत्न यह संस्था करती है। (देखिये 'बहिष्कृत भारत' पृष्ठ ३१)

आर्य समाज ।

(५) आर्यसमाज- श्री० स्वामी दयानन्द सरस्वती जीने इस समाज को बम्बई में सन १८८५ ई० में प्रथम आरंभ किया। समता का वैदिक धर्म का मत ही इस समाजका मत है। इस समाज का मत है, कि मनुष्यों के उनके गुणकर्मों के अनुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र चार भेद हैं। किन्तु ये भेद जन्मतः नहीं होते बल्कि उनके गुण- कर्म- स्वभाव के कारण उत्पन्न होते हैं। स्वामीजीने इस बातको प्रमाण सहित सिद्ध कर दिया है। यही

बात सब आर्यसमाजी लोग मानते हैं। ऋग्वेद आदि के भाष्य की भूमिका में वे इस प्रकार लिखते हैं. " यह विशेष मानना चाहिये कि, प्रथम मनुष्य जाति सब की एक है, सो भी वेदों से सिद्ध है। मनुष्य जातिके ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये चार वर्ण कहाते हैं। वेद--रीतिसे इनके दो भेद हैं एक आर्य और दूसरा दस्यु ... ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये चार भेद गुणकर्मों से किये गये हैं। ... इनका नाम वर्ण इसलिये है कि जैसे किसीके गुणकर्म हों वैसाही उसको अधिकार देना चाहिये। ब्रह्म अर्थात् उत्तम कर्म करने से उत्तम विद्वान ब्राह्मण होता है। ... बल-वीर्य के होने से मनुष्य क्षत्रिय होता है ... "

(ऋग्वे० भू० वर्णाश्रम प्रकरण)

" ...विद्या, सत्यभाषणादि उत्तम गुण, और श्रेष्ठ कर्मों से ब्राह्मण वर्ण उत्पन्न होता है। -- बल, पराक्रमादि पूर्वोक्त गुणों से क्षत्रिय... व्यापार, पशु-पालनादि गुणों से वैश्य ... मूर्खत्वादि नीच गुणों से शूद्र वर्ण सिद्ध होता है।

(ऋग्वे० भू० सृष्टि प्र०)

ये बातें देखने से ज्ञात होता है कि आर्यसमाज जाति-व्यवस्था नहीं मानता अर्थात् वह नहीं मानता कि कोई खास जातियां छूत हैं और शेष अछूत हैं। जो सद्गुणी है, सदाचारी है वही छूत है और आदरणीय है। और दुर्गुणी है तथा दुराचारी है वही निरादरणीय है। यही भेद इस समाज को मंजूर है। इस समाज को किसी भी जाति-विशेष को बहिष्कृत समझना पसंद नहीं। स्वामी दयानन्दजीने ' सत्यार्थ प्रकाश' नामका एक ग्रन्थ वेद-मत के प्रसार के हेतु लिखा है। उसमें वे लिखते हैं- " ... जो ब्राह्मणादि उत्तम कर्म करते हैं वें हि ब्राह्मणादि और जो नीच भी उत्तम वर्ण

के गुण कर्म-स्वभाववाले होवें, तो उसको भी उच्चवर्ण में और जो उत्तम वर्णस्थ होके नीच काम करे तो उसको नीच वर्ण में गिनना अवश्य चाहिये।' -सत्यार्थ प्रकाश समु० ४

"....धर्माचरण से निकृष्ट वर्ण अपनेसे उत्तम वर्ण को प्राप्त होता है और वह उसी वर्ण में गिना जावे, कि जिस जिसके योग्य होवे। वैसे धर्माचरण से पूर्व अर्थात् उत्तम वर्णवाला मनुष्य अपने से नीचे नीचे वाले वर्ण को प्राप्त होता है और उसी वर्ण में गिना जावे...." सत्यार्थ० समु०४

इस प्रकार जन्मतः ऊँचनीच के भावों का निषेध तथा गुण-कर्मतः श्रेष्ठ कनिष्ठ के भावों की स्थापना कर स्वामीजी लिखते हैं-

"...आर्य नाम धार्मिक, विद्वान्, आप्त (सत्यका उपदेश करने वाला विद्वान् वा धार्मिक पुरुष) पुरुषों का और विपरीत जनोंका नाम दस्यु अर्थात् डाकू, दुष्ट, अधार्मिक और अविद्वान् है। तथा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य द्विजों का नाम आर्य, और शूद्र का नाम अनार्य अर्थात् अनाडी है।..." सत्यार्थ० समु०८

इस प्रकार भूमण्डल के समस्त लोगों का चातुर्वर्ण्य स्वामीजीने स्थापित किया। उनका चातुर्वर्ण्य के विषयमें यह मत है कि समस्त मनुष्यों के चार भेद उनके गुण-कर्म से किये जाते हैं। गुणकर्म के अनुसार वर्णभेद माननेवाला समाज छूत अछूत के विचारों को नहीं मान सकता। इसी के बाद भक्ष्य अभक्ष्य के सम्बन्ध में लिखा है-

" ... (प्रश्न) द्विज अपने हाथ से रसोई बना के खावे या शूद्र के हाथ की बनाई खावे? (उत्तर) शूद्रके हाथ की बनाई खावे, क्यों कि ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य वर्णस्थ स्त्री-पुरुष

विद्या पढाने, राज्य पालने और पशुपालन, खेती और व्योपार के काम में तत्पर रहें और ... आर्यों के घर में शूद्र स्त्रीपुरुष पाकादि सेवा करें ..." सत्यार्थ० समु १०

मनुष्यों में जो अनाडी हैं, अर्थात् जिन्हे द्विज होने के योग्य बुद्धि नहीं है, वे शूद्र हैं। ये शूद्र द्विजों के घर अन्न पकाने आदि का काम करें। यदि यह समाज जातिविशिष्ट छूत अछूत को मानता तो वह मुसलमान, ईसाई, यूरोपीय आदि लोगों को आर्य-धर्म की दीक्षा न देता, और अपने में न मिलाता। स्वामी दयानन्द सरस्वती जीने अपने मृत्यु-पत्र में यह प्रबन्ध कर दिया है, कि वैदिक धर्म का उपदेश पृथ्वी-तल के देश देशान्तरों में जाकर किया जाय। इससे भी उपर्युक्त कथन को पुष्टि ही होती है।

इस समाज का सदस्य होने के लिये एक साल सहायक बनकर रहना पडता है और बतलाना पडता है कि अपना आचरण अच्छा है। इतना होनेपर दूसरे साल प्रवेश विधि होती है और वह सदस्य बनाया जाता है। किसी भी जातिका, किसी भी धर्म का वा किसी भी देश का मनुष्य क्यों न हो, यदि वह आर्य समाज के दस नियम मान ले और वेदमत के अनुकूल अपना आचरण सुधार ले, तो उस आर्य समाज में ऊँचे दर्जे तक पहुँचने की गुंजायश है। इस समाज के ऐसे उदार धर्ममत हैं इससे सब उच्च लोगोंका तथा हिन्दुओं द्वारा बहिष्कृत लोगों का यह समाज आश्रय-स्वरूप बन गया है। हिन्दू अन्त्यजों को धर्मान्तर कराकर ईसाई मिशनरी अपने गुट्ट में खींच लेते हैं। इसका कारण हिन्दूओंका बहिष्कार है। वैसा बहिष्कार यह समाज नहीं करता इससे यह अन्त्यजोंके उद्धार का काम बडी तेजी से कर रहा है और उसे यश भी

मिल रहा है। अनाथालय खोलकर उनमें सब जातिके—यहाँ तक की बहिष्कृत और अछूतों के--अनाथ लोगों को इसने आश्रय दिया है। उसमें विशेषता यह है कि इस समाज की चलाई हुई संस्थाओं में जातिके संबंध का उच्च नीच भाव नहीं रखा। आर्य समाज की धर्म-संस्था, शिक्षणसंस्था, अनाथसंस्था और पतित-पावन-संस्था आदि सब प्रकार की संस्थाएँ पतितों के उद्धार का कार्य चलाती हैं। इससे प्रकट होगा कि आर्य समाज ने अन्त्यजों के उद्धार का और छूत अछूत के नष्ट करने का कार्य अधिक तेजी से किया है।

भारतधर्म महामण्डल।

(६) भारत-धर्म महामण्डल-ब्रह्मसमाज, प्रार्थना समाज, तथा आर्य समाज इन प्रागतिक संस्थाओं द्वारा सुधारके जो जो काम प्रस्तुत विषय के सम्बन्ध से होते हैं, उस प्रकार के कोई भी काम इस मण्डल के द्वारा नहीं होते। हिन्दुस्थान की रूढि की जो जो रीतियाँ हैं, उन सब का मण्डन करना यही महामण्डल का एक मात्र उद्देश है। पुराने विचारों के रूढिबद्ध हिन्दू समाज द्वारा पला हुआ और उसी का कार्य करनेवाला--विशेषतः उसकी अनुमति से काम करने वाला यह मण्डल है। इतना कहने से अधिक कहने की आवश्यकता न होगी और मालूम हो जावेगा कि इसने अन्त्यजों का बहिष्कार तथा छूत अछूत को हटाने के विषय में क्या तरक्की की है। थिआॅसफी की विद्युत् शास्त्र के नियमों के आधारपर हिन्दु की कुछ प्रचलित रीतिरस्मों को सशास्त्र सिद्ध करने की पद्धति कुछ कुछ बातों में इस समाज को भी मंजूर है। तबभी

अन्त्यजों के उद्धार के कार्य में इस मण्डलद्वारा विद्यादान भी नहीं किया जाता जैसे थिआसफी करती है। यदि यह मण्डल अन्त्यजों के उद्धार का कार्य तेजी से करने लगे, तो पुराने विचारों के लोग इसे आश्रय न देंगे और मण्डल नष्ट हो जावेगा। ऐसी हालत में इस संस्था के द्वारा प्रस्तुत विषय के सम्बन्ध में कोई भी कार्य होना असम्भव है।

वर्तमान समय में विद्यमान भिन्न भिन्न मुख्य संस्थाओं के मुख्य सिद्धान्त और प्रस्तुत विषय के सम्बन्ध से उन के कार्य-क्षेत्र किस प्रकार संकुचित वा विस्तृत हैं इस विषय में उपर्युक्त कथन से वाचक अच्छा अन्दाज कर सकते हैं।

भाग १४ वां।

बहिष्कृत लोगों की आबादी !

जातिभेद, व्यर्थकी छूत अछूत. कुछ बातोंमें को सदाकी अछूत तथा खास जातियोंका बहिष्कार आदि अनेक कारणोंसे छिन्न भिन्न हुए हिन्दुसमाज की सच्ची शिथिलता जाननी हो तो अपने को देखना होगा कि आधे अछूत तथा पूरे अछूत लोगों की संख्या अपने समाज में कितनी हैं। यदि समाज की स्थिति अच्छी रखना हो तो अल्प संख्या वालों को दूर रखकर न चलेगा।

फिर बहुसंख्यावालों की ओर ध्यान न देने से कैसे चलेगा? इसी लिए देखें कि हिन्दुस्थानियों के भेद जो धर्म से तथा जाति भेदसे बने हैं, किस प्रकार हैं?—

हिन्दुस्थान की आबादी का प्रदेश के अनुसार तथा जातिके अनुसार निरीक्षण।

(१) सनातन धर्मियोंकी आबादी।

(क) अजमेर, मेवाड, राजपूताना, पंजाब तथा कश्मीर के हिन्दुओं की आबादी—

(१) ब्राह्मण- २३, ३०, ५८२

(२) क्षत्रिय, (खत्री, राजपूत आदि) ... ३५, ५६, ७९९

(३) वैश्य- (अग्रवाल, खंडवाल, महेश्वरी आदि) ९,१५,०५०

कुलद्विज ६८०२, ४३१

(४) शूद्र- (अ) सत्-शूद्र- (जिनके घर ब्राह्मण भोजन नहीं करते किन्तु जिनका पानी ले सकते हैं, अहीर, गुजर, जाट, अरोरा, कानेट, सैक आदि) ६९,३८,८६७

(आ) असत्-शूद्र- वे जातियां जिनके हाथ का पानीभी ब्राह्मण नहीं लेते, वा धीवर. खार्टी, लोधा, लंमान आदि)	२३,५१,५४२
(इ) अंत्यज-अछूत शूद्र, (जिनसे ऊंची जातियां किसी भी प्रकार का व्यवहार नहीं करतीं अर्थात् पूरी तरह से वहिष्कृत जातियां, भील, चमार. धनक, खटीक, दासी, रेगर आदि)	३६,३८,७८५
कुल शूद्र	१,२९,२९.१६६
जो ऊपर के वर्गों में शामिल नहीं	१, ३३, ५८१
कुल मिलाकर	१, ९८. ६५, १७३

(ख) वम्बई, वडोदा, तथा कुर्ग के अहातों में हिन्दुओं की आवादी—

(१) ब्राह्मण १२, ००, ४३१
(२) क्षत्रिय २२, १९, ६९२
(३) वैश्य ४७, ३४, ९७२

कुल द्विज ८१, ५५, ०९५

(४) शूद्र-(अ) सत्-शूद्र ५१, ००, ७७३
(आ) अंत्यज- अछूत
शूद्र (जिनसे) ऊंची जातियां

किसी भी प्रकार का व्यवहार नहीं
करती; बेरड, भंगी, भील, चमार, धेड,
मांग, म्हार आदि) ३४, ७९, ०८४

कुल शूद्र ८५, ७९, ८५७
जो उपर्युक्त दर्जों में शामिल नहीं किये गए ... ३७, ५२, ६६७

कुल मिलाकर २, ०४, ८७, ६१९
[बम्बई अहाते में कुल लिंगायत ....१४, २२, २९३ हैं
और उनमें से अछूत लिंगायत .... १, ३५,७१८ हैं]
(ग) मद्रास अहाता, मैसूर, हैदराबाद, त्रावनकोर, कोचीन में
हिन्दुओं की आबादी—
(१) ब्राह्मण २१, ५८, २६८
(२) क्षत्रिय ४, ५०, ४९६
(३) वैश्य १०, ७८, १३९

कुल द्विज ३६, ८६, ९०३
(४) शूद्र- (अ) सत्-
शूद्र (चेट्टी, नायर आदि) १, ७५, ३७, २५४
(आ) असत्- शूद्र १, २०, ४४, ६१९
(इ) अंत्यज- अछूत-शूद्र-
(अंत्यज, पत्या, पंचम,
आदि पूर्ण बहिष्कृत जातियां) १. ५३, ७४, ०७३

कुल शूद्र ४, ४९, ५६, ९४६
लिंगायत, जंगम आदि ३९, ७२, ५१७
उपर्युक्त दर्जों में शामिल न किए गए १. ९६, ०५७

कुल मिलाकर ५, २८, २२, ४२३

(घ) छोटानागपुर, उड़ीसा, खंडमहाल के हिन्दुओं की आवादी-

(१) ब्राह्मण	२, १४, ६७७
(२) क्षत्रिय	१, ९६, ३४१
(३) वैश्य (इस प्रदेश के द्विजों में जो वैश्य हैं वे शूद्र समझे जाते हैं। यह धार्मिक अन्याय है।)	......०
कुल द्विज	४, ११, ०१८
(४) शूद्र- (अ) सत् शूद्र	१६, ९९, ५१३
(आ) असत् शूद्र	३, ५२, ०३०
(इ) अंत्यज — अछूत शूद्र —	३९, ३७, ७९९
कुल शूद्र	५९, ८९, ३४२
उपर्युक्त दर्जों में शामिल न किएगए	११, ९३, ७९८
कुल मिलाकर	७५, ९४, १५८

(ङ) मध्यप्रान्त तथा वरार के हिन्दुओं की आवादी-

(१) ब्राह्मण	४,९५, ४९६
(२) क्षत्रिय	२,८७, ६२०
(३) वैश्य	३,२७, ०८१
कुल द्विज	१२,१०, १९७

(४) शूद्र—(अ) सत्- शूद्र- (अर्थात्
वे जिनके हाथका पानी ब्राह्मणों
को चलता है परन्तु जिनका
अन्न नहीं चलता। अहीर,

गुजर, काछी. कुनबी आदि)...	४९, ७२, ७५१८.
(आ) असत् - शूद्र- (इनके हाथका पानी भी ब्राह्मण नहीं लेते। कलाल, कुम्हा, कोल, गोंड, आदि)............	४८, ०४, २३३
(इ) अन्त्यज- अछूत शूद्र— (महार. मांग, मेहेतर, धीवर, आदि पूर्ण वहिष्कृत जातियां)...........	२३, ४५, २१०
कुल शूद्र	१, २१, २२, २०१
उपर्युक्त दर्जों में जो शामिल नहीं किए गए।	६, ७५, ६८७
कुला मिलाकर	१, ४०, ०८, ०८५

(च) संयुक्त प्रान्त के हिन्दुओं की आबादीः--

(१) ब्राह्मण	५२, १५, ६१५
(२) क्षत्रिय	३९, २१, ९६३
(३) वैश्य	२१, ०५, ९१४
कुलद्विज	१, १३, ३३, ४९२
(४) शूद्र - (अ) सत्- शूद्र- (जिनके घर का पानी तथा पक्की रसोई, ब्राह्मण लेते हैं जाट, हलवाई, अहीर आदि)	१, १६, ५७, ४७७
(आ) असत्-शूद्र-- (जिनके हाथ का पानी भी ब्राह्मण नहीं लेते, परन्तु जिन्हे छूते हैं, बंजारी, तेली, कंजार, लोक आदि)	७६, ०९, ५६४
(इ) अन्त्यज-- अछूत-- शूद्र-	

(मेहेतर, डोम, चमार आदि)	१, ००, ४८, ८५८
कुल शूद्र	२, ९३, १५, ८९९
भिखमंगे तथा ऊपर के दर्जोंमें न आये हुए लोग	४, ०१, ९९९
कुल मिलाकर	४, १०, ५१, ३९०

(छ) बिहार के हिन्दुओं की आबादी-

(१) ब्राह्मण	१०, ९४, ५०९
(२) क्षत्रिय	२६, ६१, ४६०
(३) वैश्य इस प्रान्त में वैश्यों की भी गणना शूद्रों में की जाती है ।	०
कुल द्विज	३७, ५५, ९६९
(४) शूद्र- (अ) सत्-शूद्र- (जिनके हाथ का पानी तथा पक्की रसोई ब्राह्मण ले सकते हैं. अहीर हलवाई, आदि)	८६, ०९, ०४९
(आ) असत्- शूद्र (छूत शूद्र)	२५, ०७, ६०२
(इ) अंत्यज- अछूत-शूद्र- (चमार, डोम, मेहेतर, मसाहार, पासी आदि)	४१, १६, ०८३
कुल शूद्र	१, ५२, ३२, ७३४
जिनको ऊपरके दर्जों में शामिल नहीं किया	१६, ६७, ३२७
कुल मिलाकर	२, ०६, ५६, ०३०

(ज) बंगाल अहाते के हिन्दुओं की आबादी-

(१) ब्राह्मण	१२, ३८, ०११
(२) क्षत्रिय	१२, ८१, १६०
(३) वैश्य	०
कुल द्विज	२५, १९, १७१

(४) शूद्र – (अ) सत् शूद्र	५६, ९१, ९९१
(आ) असत्- शूद्र	१५, ५१, १९७
(इ) अन्त्यज- (चमार, मोची, डोम, आदि अछूतलोग)	७९, ५८, ७२१
कुल शूद्र	१, ५२, ०१, ९०९
जो उपर्युक्त दर्जों में शामिल नहीं	१८, ९८, ४५७
कुल मिलाकर	१, ९६, १९, ५३७

(झ) उड़ीसा के हिन्दू

(१) ब्राह्मण	४, १५, १४०
(२) क्षत्रिय	७, ४९, ७२०
(३) वैश्य (इस प्रान्त में भी वैश्यों की गणना शूद्रों में की जाती है।)	०
कुल द्विज	११, ६४, ८६०
(४) शूद्र- (अ) सत्- शूद्र	१२, ६४, ७७२
(आ) असत्-शूद्र	२, ३०, १०२
(इ) अंत्यज (चमार, हारी, पान आदि अछूत लोग)	११, ०६, ७९३
कुल शूद्र	२६, ०१, ६६७
ऊपर के दर्जों में जो शामिल नहीं हैं	२, ७६, ५९०
कुल मिलाकर	४०, ४३, ११७

(ञ) आसाम के हिन्दु लोगों की आबादी—

(१) ब्राह्मण	१, ३०, ८५२
(२) क्षत्रिय	१०, ६१, ०१९

(३) वैश्य (इस प्रान्त में भी वैश्यों की गणना शूद्रों में की जाती है।) ०

कुल द्विज ११, ९१, ८७१

(४) अछूतशूद्र, अंत्यज, नामशूद्र आदि-

कुल शूद्र १०, ९३, ८९८

उपर्युक्त दर्जों में जो शामिल नहीं २२, १२, ०२४

कुल मिलाकर ४४, ९७, ७९३

(ट) कुचविहार के हिन्दु-

(१) ब्राह्मण १५, ४८३

(२) क्षत्रिय ३, २९, ७४९

कुल द्विज ३, ४५, २३२

(३) शूद्र - अंत्यज आदि कुल शूद्र १, ३७, ३६८

ऊपर के दर्जों में जो शामिल नहीं ७५, ७८७

कुल मिलाकर ५,५८,३८७

दूसरे हिन्दु १९, ४३. ३१४

कुल हिन्दू २०, ७१, ४७, ०२६

हिन्दुओं की वर्णों के अनुसार आबादी-

(१) ब्राह्मण १, ४५, ०९, ०६४

(२) क्षत्रिय १, ६८, १६, ०१९

(३) वैश्य ९२, ५१, १५६

(४) शूद्र- (सत्-शूद्र तथा असत्-शूद्र) ९, ४९, २४, ३५०

(अ) अंत्यज ५. ३२, ३६. ६३२

(आ) दूसरे लोग जो ऊपरके वर्णोंमें शामिल नहीं — १, ८४, ०९, ८०५

कुल हिन्दु २०,७१,४७,०२६

(२) मुसलमान

(क) पंजाब, कश्मीर, राजपूताना के मुसलमान—

(१) अश्राफ् (श्रेष्ठ)	१५, १६, ९९८
(२) अज्लाफ् (कनिष्ठ)	५६, ६८, ६४९
(३) अर्जाल (हीन)	५८, ४६, ४६६
दूसरे (मुसलमानी अंत्यज)	२३, ०२, ६९४
कुल	१, ५३, ३४, ८०७

(ख) संयुक्तप्रान्त तथा बिहार के मुसलमान-

(१) अश्राफ् (श्रेष्ठ)	४५, ९०, ०६०
(२) अज्लाफ् (कनिष्ठ)	१३, ६१, ९८३
(३) अर्जाल (हीन)	२७, ७५, ००३
(४) दूसरे (मुसलमानी अंत्यज)	१५, ६७, ४००
कुल	१, ०२, ९४, ४४६

(ग) बंगाल तथा उडीसा के मुसलमान—

(१) अश्राफ्	१, ९९, ८०, ५४७
(२) अज्लाफ्	८, ८७, ६८९
(३) अर्जाल	५, ४४, ०७५
कुल	२, १४, ११, ४०८

दूसरे प्रान्तों के मुसलमान	१, ५४, ०९, ४१६
हिन्दुस्थान के कुल मुसलमान	६, २४, ५८.०७७

(३) हिन्दुस्थान के अंत्यजों के कुछ मुख्य भेद-

जाति	निवासस्थान	आबादी
१ चमार	प्रायः हरजगह	१, ११, ३७, ३६२
२ मोची	,, ,, ,,	१०, ०७, ८१२
३ डोम	बंगाल, आसाम, पंजाब	९, ७७, ०२६
४ मेहेतर	बंबई, संयुक्तप्रान्त, राजपूताना	६, ५६, ५८६
५ ढानूक	बंगाल, पंजाब	८, ७०, ५५७
६ बागडी	बंगाल, आसाम	१०, ४२, ५५०
७ बळई	मालवा, मध्यप्रान्त	५, ८४, ३३४
८ छूरा	उत्तर हिन्दुस्थान	१३. २९, ४१८
९ नामशूद्र, चंडाल	,,	२०, ३१, ७२५
१० राजवंशी	,,	२४, ३८, ६५४
११ धेड (महार)	बंबई, बरार, मध्यप्रांत	२९, २८, ६६६
१२ मांग	,,	५, ७९, ३०६
१३ व्हलिया (म्हार)	कर्नाटक, मद्रास	७, ७०, ८९९
१४ मादिग (मांग)	,,	१२. ८१, २५२
१५ पारिया	मद्रास ब्रह्मा	२२, ५८, ६११
१६ शिक्लिया	,, ,,	४, ७८, ४९६
१७ माल	,, बंगाल	१८, ६३, ९०८
	दूसरी जातियां	२, ०९, ९९, ४७०
	कुल अंत्यज	५, ३२, ३६, ६३२

(श्रीयुत शिंदे की बनाई 'बहिष्कृत भारत' नामक पुस्तककी इस विषय में लेखक को बहुत मदद मिली। इसलिए लेखक श्री. शिंदे का अहसानमंद है।)

हिन्दुस्थान-- की कुल आबादी २९, ४३, ६१, ०५६

हिन्दुओं की कुल संख्या २०,७१,४७,०२६
अंत्यजों की कुल संख्या ५,३२,०६,६१२
हिन्दुस्थान की कुल आबादी २९,४३,६१,०५६
मुसलमानों की कुल संख्या ६, २४,५८,०७७
हीन (बहुत कुछ अछूत) मुसलमानों की संख्या ८६,२८,५६६

उपर्युक्त संख्याओं को देखने से मालूम होगा कि हिन्दुओं में से एक-चतुर्थांश से भी अधिक ऐसे लोग हैं जो अछूत तथा पूर्णतया बहिष्कृत हैं। मुसलमानों में अछूत या नीच जाति के लोगों की संख्या उनकी कुल आबादी का सातवां हिस्सा है। इन दोनो धर्मों के नीच जाति के लोगों की संख्या मिलकर करीब सवाछः करोड के है। अर्थात् तीस करोड हिन्दुस्थानियों में सवाछः करोड लोग ऐसे हैं जो स्पर्श करने योग्य नहीं हैं! इसका मतलब यही है कि हर पांच आदमियों पीछे एक मनुष्य ऐसा है जो व्यवहार करने योग्य नहीं है।

(४) अब देखिए ऊंचे से ऊंचे हिन्दू और नीचसे नीच हिन्दु का भिन्न भिन्न प्रान्तों का मान फी सैंकडा क्या है—

प्रान्त	ब्राह्मण	अंत्यज
(१) पंजाब, कश्मीर, राजपूताना	१२	१८
(२) बम्बई, बडोदा, कुर्ग	६	१७
(३) मद्रास, मैसूर, हैदराबाद आदि	४	३०
(४) छोटा नागपूर,	३	५८
(५) मध्यप्रान्त, वहार	५।१२	१६
(६) संयुक्त प्रान्त	१३	२५
(७) बिहार	५	२१

(८) ओरिसा	१०	३०
(९) बंगाल	६	४५
(१०) आसाम, सिकिम, कुचविहार	३	४४
	७०	३०४

इस मान को देखने से विदित होगा कि अंत्यज ब्राह्मणों से चौगुने हैं। संख्यामें इतने अधिक रहते हुए भी हजारों वर्षों से ये लोग विद्यासे तथा सभ्यतासे वंचित रहे, इससे इनकी ऐसी नीच दशा हुई। अल्पसंख्यावालों की यह धार्मिक तथा सामाजिक जादती है यह अन्याय है, यह उनके हकों को पैरों से ठुकराना है। इन लोगों का उद्धार करने के लिए दृढ प्रतिज्ञ होकर जो संस्थाएं स्थापन हुई हैं उनका संख्याबल अब देखें।

हिन्दू	२०, ७०, ५०, ५५७
आर्यसमाजी	९२, ४१९
ब्रह्मोसमाजी तथा प्रार्थनासमाजी	४. ०५०
सिक्ख	२१, ९५, ३३९
जैन	१३, ३४, १४८
बौद्ध	९४, ७६, ७५९
पार्शी	९४, १९०
मुसलमान	६, २४, ९८, ०७७
ख्रिस्ती	२९, २३, २४१
ज्यू	१८, २२८
आनिमिस्ट	८५. ८४, १४८
दूसरे लोग	१, २९, ९००
कुल मिलाकर	२९, ४३, ६१, ०५६

तीस करोड लोगों में से आचरण में छूत अछूत, सचमुच न माननेवाले केवल आर्यसमाजी तथा ब्रह्मसमाजी हैं और वे एक लाख हैं। मुसलमान तथा ईसाई लोग अपने अपने धर्म के अनुसार छूत अछूत न माननेवाले ही हैं। परन्तु ऊपर बताया गया है कि मुसलमानों में अछूत (मुसलमान) एक सप्तमांश हैं। इसी तरह इसाइयों में— खासकर दक्षिण के कुछ इसाइयों में (रोमन कैथोलिक संप्रदायके इसाइयों में)— कुछ ऐसी जातियां हैं जिनमें छूत अछूत का प्रचार अबभी है। पारसी तथा ज्यू लोगों की संख्या बहुत छोटी है, उनमें भी याजकों में छूत अछूत मानते हैं। जैन, बौद्ध तथा सिक्ख असलमें उदार मत के लोग हैं परन्तु हिन्दुओं के साथ रहने से वे अब अनुदार हो गए हैं। यह बात भी भूलना नहीं चाहिए कि इन दूसरे धर्मियों की मदद छूत अछूत के मिटाने में लेना और वह मदद मिलना अपनी जाति का घात करने के बराबर है। जैन, बौद्ध, पारसी, मुसलमान, ईसाई तथा ज्यू (यहूदी) धर्मोंका आश्रय छूत अछूत दूर करने के लिए किया जावे तो उससे जितने हिन्दुओं की अछूत दूर होगी उतनों का हिन्दुत्व भी नष्ट होगा। इसलिये अंत्यजों की अछूत को दूर करने के लिए उन्हे दूसरे धर्मों का आश्रय लेने को विवश करना हानिकारक है। इसलिये आवश्यकता इस बात की है कि छूत अछूत को मिटाने के लिये तथा अंत्यजों का उद्धार करने के लिए दूसरे धर्मों का आश्रय लेने की आवश्यकता नहीं। आर्यसमाज, तथा ब्रह्मसमाज (या प्रार्थनासमाज) ऐसे हैं जो हिन्दुओं की प्राचीन सभ्यता को कायम रखते हुए उसमें उदारता के भावों को उत्पन्न करते हैं। आर्यसमाज

वेदों को मानता है। ब्रह्मसमाजी धर्म की केवल वे ही बातें मानते हैं जो उनको तर्कशास्त्र से शुद्ध प्रतीत हों। संपूर्ण हिन्दु जाति वेदों को तथा चातुर्वर्ण्य को मानती है। इस विस्तृत भारत में बहुत दूर तक फैले हुए भारतीयों में अपनी संघशक्ति से काम करने वाले यदि कोई हैं तो वे आर्य समाजी हैं। परन्तु यदि हिन्दु लोग खुदही जाग उठें तो कितना अधिक लाभ होगा।

इन बातों से स्पष्ट है कि इस विषय में सच्चा सुधार करने वाले बहुत ही थोडे लोग हैं। इन लोगों को हिन्दुलोगों की सहानुभूति जैसी चाहिये वैसी नहीं मिलती। इससे वे लोग जिस सफलतासे काम करना चाहिए नहीं कर सकते। काम भारी है, काम करनेवाले थोडे हैं, विरुद्ध दिशासे काम करने का सामर्थ्य अधिक और समाज उदासीन ऐसी हालत में यह काम कितनी जोखम का है सो ज्ञात हो जावेगा। इसी लिए इस काम को करने के लिये सच्चे धर्म-वीरों की आवश्यकता है।

भाग १५ वा

उपाय-चिंतन की आवश्यकता।

(१) जिन को अछूत मानते हैं उन लोगों की संपूर्ण संख्या देखने से विदित होगा कि यह तो हिन्दुओंका एक अंग है, एक मुख्य अंग है। उसकी ओर ध्यान न दें तो चल ही नहीं सकता। साढे पंद्रह करोड छूत हिंदू हैं और साढे पांच करोड अछूत हिंदू हैं ये साढे पांच करोड ऐसे हैं जिनको अपनी उन्नति का मौका खुली रीतिसे मिलना कठिन हैं। नवीन सभ्यता हिन्दुस्थान में सौ सालसे चल रही है परन्तु ये लोग उससे लाभ न उठा सके, इसका मुख्य कारण एक ही है और वह है समाज ने किया हुआ उनका बहिष्कार।

क्या यह दुःख की बात नहीं है कि सार्वजनिक संस्थाएं भी इनका उपयोग नहीं कर सकती? अमरिका में जपानी लडकों को स्कूलमें भरती करने से इन्कार करते ही जो लोग अमरिका की सरकारपर अपनी वक्तृता के हंटर उडाते हैं, जो समझते हैं कि ट्रान्सवाल में भारतीयों को ट्राम में बैठने से मना करना या सडक पर चलने से मना करना वडा भारी अन्याय है, उन लोगों को कुछ भी आश्चर्य नहीं होता, जरा भी अन्याय नहीं दिखता जब स्वदेश के तथा स्वधर्म के धेड या मांग जाति के लडकों को स्कूल में प्रवेश करना मना है, ऊंची नौकरी मिलना असंभव है, पोस्ट आफिस, तारआफिस, सार्वजनिक असपतालें सार्वजनिक सभाएं, वाचनालय आदि में दूसरी जातियों की बराबरी से बैठने का उन्हें हक नहीं है, उन्हे ऊंच वर्ण के मनुष्यके घरपर आना मना है। इतना ही नहीं, यदि ऊंची जाति का कोई मनुष्य इनको धोके से

स्पर्श कर ले तो उस ऊंची जातवाले को स्नान करना पडेगा। इन हर रोज घटनेवाली घटनाओं को देखकर लोगोंपर कुछ भी असर नहीं होता। क्या यह भारी आश्चर्य नहीं है? जिस बात के लिए विदेशियों को गालियां सुनाई जाती हैं वही बात अधिक तीव्रता से यहां चल रही है। दक्षिण आफ्रिका के हिंदुस्थानियों को जो कष्ट सहना पडते हैं, या पडे हैं, उनसे कई गुना अधिक कष्ट हिन्दुस्थान के अंत्यजों को सहना पडते हैं। और वे दो हजार वर्षों से लगातार भोगते रहे हैं। क्या देशभक्तों तथा धर्मात्माओं को इस बातका विचार करना चाहिए?

(२) यदि हम इस विषय में विचार ही न करें, कुछ सोचें ही नहीं, तो कुछ समय बाद ये साडे पांच करोड अछूत हिन्दु संभवतः ईसाई बन जावेंगे और आगे पीछे किसी समय हिन्दुओं की बराबरी करने लगेंगे। उन्नति की जो लहरें इस देशपर आगई हैं, जो नवीन विचार उत्पन्न हुए हैं, जो नवीन सभ्यता अपने देश में फैल रही है, वह इन लोगोंतक अवश्यही पहुंचेगी और कई स्थानों में पहुंच गई है। इस दशामें ऊंची जांती के लोग यदि उनकी उन्नति में बाधा डालकर कुछ रोक टोक करेंगे तो खुद नुकसान उठावेंगे। और ये साडे पांच करोड लोग उनके दुश्मन बन जावेंगे। हिन्दुओं को चाहिए कि वे इस बात का विचार करें। मनुष्य के स्वभाव का नियम है कि उन्नति में बाधा डालनेवालों के विषय में द्वेष उत्पन्न होता है। अमरिका में यूरोपीय लोग जाकर बसे उन्होंने अमरिका के मूलनिवासी रक्तवर्ण लोगों का नाश किया। यह बात उन रक्त वर्णियों को जो नवीन सभ्यता को स्वीकृत कर सभ्य बने हैं तीर के समान चुभती है। इसी लिए रक्तवर्ण के लोग अमेरिकनों का द्वेष करते हैं। ट्रान्स्वाल में रहनेवाले भारती

पर जो जादती हो रही है, उसके कारण वहां के निवासियों के विषयमें भारतीय व्यक्ति के हृदय में सहानुभूति नहीं है। ये बातें भी मनुष्यस्वभाव के ही अनुकुल हैं। यदि ऊंची जाति के हिन्दु नीची जातियों की उन्नति में मदद न दें तो वही हाल होना संभव है। पेशवाओं के समय में अंत्यजों का यह हाल था कि यदि वे रास्ते से निकलते तो उन्हे थूंकने के लिए एक मटका साथ रखना पडता था। दूसरे हिंदु रास्तेपर थूंक सकते थे किंतु अन्त्यज नहीं। यदि उन्हे थूंकना हो तो वे मटके में थूंके। आजकल के शिक्षित अंत्यजों में से कुछ इस पुराने अन्याय को बताकर उच्च वर्णियों को कोसते हैं। उन लोगों का यह काम भी स्वाभाविक है। इसमें उनका दोष अधिक नहीं है। उनके स्थान में दूसरा कोई होता तो वह भी ऐसा ही करता। पेशवाई नष्ट हुई, वे दिन हवा हुए, वह बात,वह प्रथा जाती रही, परन्तु उस अन्याय की आंच हृदय में कायम रही। राष्ट्रीय अपमान या जातिविशेष के कारण होनेवाला अपमान व्यक्तिगत अपमानसे बहुतही अधिक आंसता है। उन लोगों ने दस,बीस शताब्दियों से इस अपमान को सहन किया; यदि हम अब भी उसमें मदद करें तो आगामी पीढी को इसका बुरा परिणाम सहना पडेगा। ऐसा करने से हमही अपने लिए एक बलवान शत्रु उत्पन्न कर रखेंगे। इस भवितव्यता की आपत्ति की ओर ध्यान देते हुए जातिकी हर व्यक्ति को चाहिये कि वह अन्त्यजों के उद्धार में विघ्न-बाधाएं न खडी करें। इतना करने होसे न चलेगा। उन्हे चाहिए कि वे दिलोजान से अन्त्यजों की उन्नति में लग जावें। यदि वे ऐसा करें तो अन्त्यजों का बंधन उदारता से तोड देने के श्रेय के भागी होंगे। और वे भविष्यत् की पीढी को सहानुभूति से मदद

करेंगे ।

यदि ऊंची जाति के हिन्दु अन्त्यजों के उद्धार में मदद न करें तो ईसाई पादरियों का प्रवेश उन लोगों में अधिक होगा और वे अधिक संख्या में धर्मान्तर करेंगे । ईसाई या मुसलमान बननेसे समाज में दर्जा बढता है । यह बात उन लोगों को मालूम है । तिसपर भी वे स्वधर्म में डंटे हैं। यह उन लोगों के लिए गौरव की बात है । अब भी यदि हम उदारता नहीं दिखाते तो उन्हें धर्मान्तर करना आवश्यक हो जावेगा । इस प्रकार धर्मान्तर किए हुए छः करोड अंत्यज उसी प्रकार राष्ट्र के हित के देश के हितशत्रु घातक बनेंगे जैसे छः करोड मुसलमान बने हैं । इसका कारण स्पष्ट ही है कि यदि इन लोगों का धर्मान्तर कहीं हो सकता है तो वह उदार मत· वाले ईसाई धर्म में ही । इसका भी कारण इसाई पादरियों का निस्वार्थ और त्यागपूर्ण परिश्रम है । राजकर्ताओं का धर्म ईसाई होने के कारण दूसरों की अपेक्षा ईसाईयों को कुछ अधिक सुविधाएं होंगीं। क्यों कि यह वचन प्रसिद्ध ही है कि 'राजा कालस्य कारणम् । ' इस प्रकार जिन लोगों को हिन्दुओं के वृथा अभिमान के कारण धर्मान्तर करना पडेगा वे साढे पांच करोड अंत्यज ईसाई बनकर जिस प्रकार मुसलमान लोग अपना ऊंचा पन प्राचीन बादशाहत के आधारपर सिद्ध करते हैं, उससे कहीं अधिक जोर से, वर्तमान अंग्रेज सरकार के आधारपर सिद्ध करेंगे । इस प्रकार एक राष्ट्रीयता की कल्पना में बाधा होगी आजकल हिन्दु और मुसलमीनों में ही झगडा है आगे चलकर हिन्दु, मुसलमान तथा ईसाइयों में झगडा होने लगेगा । इस प्रकार हिन्दु समाजकी शक्ति कम होगी और अपन ही अपने दुश्मान बढा लेंगे । इस प्रकार की दशा होना बडे दुःख की बात होगी । इस प्रकार की डरावनी हालत होना कभी भी योग्य न होगा ।

इसीलिए आवश्यक है कि ऊंची जाति के हिन्दु इन नीच जातिके लोगों को सुधारने के लिए उद्योग शुरु कर दें।

(३) अंत्यज यदि आज की स्थिति में ही रहे आएं तो भी उससे राष्ट्र की हानि है। एक पंचमांश हिन्दु लोग अपढ, पूर्ण अज्ञानी तथा पूर्णतया अछूत एवं अव्यवहार्य रहें तो देश के दूसरे लोगोंपर इसका बुरा असर होगा। उन्हे इसी दशा में रखने के कारण समाज में, देश में धर्म में, उदारता का प्रवेश न होने पावेगा। और सब लोगों को अनुदार बनना होगा। इस प्रकार की अनुदारता के आधारपर जो नियम बनाए जावेंगे वे सब अन्यायके बनेंगे। और जो लोग ऐसी अवस्थामें रहे आवेंगे वे भी अनुदार हो जावेंगे। अर्थात् आगे की पिढी की बौद्धिक तथा नैतिक बाढ रुक जावेगी और वे संकुचित विचार के बन जावेंगे। ऐसा हो जाने से हिन्दी राष्ट्र का उदय नहीं होगा। उसका नाम सभ्य राष्ट्रों में शामिल नहीं किया जावेगा। यह आपत्ति रोकने के लिए संकुचित विचार दूर कर, उदार धर्मतत्त्वों को तुरंत अपनाकर दस, बीस शताब्दियों से घने अज्ञानरूपी अंधकार में पडे हुए अंत्यजों को बाहर निकालनेके पवित्र काम में सबको लग जाना आवश्यक है।

छूत अछूत की प्रथा को कायम रहने देनेसे, तथा सामाजिक बहिष्कार की अत्याचारी रीतिका प्रवाह बिना रुकावट के बहने देनेसे सब हिन्दु वैदिक तथा उपनिषद् काल के वैभव से सदा के लिए च्युत रहेंगे। ज्ञानी वा अज्ञानी हरएक हिन्दु को उस समय के वैभव का अभिमान है। इस वृथा अभिमान से कुछ लाभ नहीं किन्तु इसी अभिमान की तथा उस समय के वैभव को स्मृति से ही हिन्दु समाज का उत्थान होगा। उसी की

सामर्थ्य से यह समाज नवीन जोश से महान् कार्य करेगा और संसार में अपनी कीर्ति फैलावेगा। आज भी प्रत्येक हिन्दु को वैदिक काल की स्थिति प्राप्त करने की अभिलाषा है। इसी लिए हम लोगों को उचित नहीं कि रूढि रूपी राक्षसी के गाल में समाकर हमलोग पूर्वेतिहास शून्य बन जावें। उपनिषत्-काल के समता के सिद्धान्तों को स्मरण कर उन्हे उपयोग में लाना आवश्यक है। वे सिद्धान्त किसी साधारण मनुष्य के बनाए नहीं हैं। और न एक दो व्यक्ति के लिए ही बनाए गए हैं। संपूर्ण जनता के स्वास्थ्य के नियम संसार को विदित हों इसी लिए उन्हे सिद्धहस्त मुनियों ने बनाया है। हम लोगों को जो कुछ करना है वह केवल इतना ही है कि वे सिद्धान्त रूढि रूप धूलिमें दब गए हैं, उस धूलि को अलग करना है जिससे कि उनका तेज चारो दिशाओं में फैल जावे। वर्तमान समय में प्रचलित रूढि में फंसे रहने से विश्व-बंधुता, समानता, सर्वभूतात्मभाव, भूतमात्र की भलाई की इच्छा आदि प्राचीन कालके वेदान्त-शास्त्र-प्रतिपादित सद्गुण हम लोगों से अलग रहे। प्रकाश और अंधकार में जितनी भिन्नता है, उतनी ही रूढि और ऊंचे विचारों में है। सामाजिक बहिष्कार भी उन ऊंचे विचारों के विपरीत है। जब तक यह कुप्रथा हम लोगों में रहेगी तब तक वे उच्च विचार हम लोगों से मुंह मोड़ेंगे। वे ऊंचे गुण आजावें तो कुविचार पास न रहेंगे। प्राचीन काल के जिस वैभव की अधूरी और अस्पष्ट कल्पना हम लोगों को लुभाती है, और जिस वैभव का तेज आज संसार की आंखों में चका चौंध उत्पन्न करता है, उस श्रेष्ठतम काल के वैभव को पुनरपि प्राप्त करने के लिए समानता के सिद्धान्तों का अव-

लक्ष्य कर अन्त्यजों का उद्धार करने की अत्यन्त आवश्यकता है।

(४) समाज की नीति तथा प्रत्येक व्यक्ति की नीति सुधारनेके लिए, उदार-चरित बनने के लिए, समानता के सिद्धान्तों को उपयोग में लाना आवश्यक है। सब साधुसन्तों ने तथा प्राचीन ऋषियों ने अपने आचरण से सारे संसार को दिखला दिया कि यही समानता का मार्ग उत्तम है। कुछ धर्म-प्रवर्तकोंने तथा आचार्यों ने इन सिद्धान्तों का जोर से प्रचार किया। इस बातका निश्चय है कि प्रत्यक्ष व्यवहार में भी वे ही सिद्धान्त सहायक होंगे। महा पुरुषों की संमति, प्रत्यक्ष अनुभव, तथा तर्कसे सिद्ध होनेवाले प्रमाण, इन तीनों प्रकारों से विचार करने पर यही निश्चय होता है कि हिन्दुओंकी विषमता की समाजरचना खासकर अछूतों के संबंध की समाज रचना-हानिकारक है। यदि हम लोग इन सब बातों के विरुद्ध चलें तो राष्ट्रीय आत्मघात होगा। इसी तरह हमारा देश कई शताब्दियों से आतमघात, करता रहा है। यह भारी भूल थी, इसी के कटु फल आज हम चख रहे हैं। इस बात को देखते हुए भी उसी प्रकार बर्ताव करना उसी मार्ग से जाना कदापि सुखदायी नहीं होगा।

(५) मिसर (ईजिप्त) देश में हिन्दुओं के जातिभेद के सदृश ही विषमता की समाज पद्धति थी। जिस समय जवान मिसरवासियों में जातीयता का नया तेज उत्पन्न हुआ, तब उनके हृदय उदार भावनाओं से भर गए और उन्हे समाज का अन्याय स्पष्ट रीतिसे दिख पडा। वे लोग समझ गए कि इस प्रकारकी प्रथा स्वराजके नवीन नियमों में बाधा डालनेवाली है। तब उन लोगोंने जातिके संबंध की ऊंच नीच भावनाओं को त्याग दिया।

और समानताकी उदार प्रथा का स्वीकार किया। इस जाति की उन्नति का इतिहास भी हिन्दुओं को बता रहा है कि विषमता की कुरीति का त्याग बहुत जल्दी करना चाहिए।

(६)जपानकी प्राचीन समाज रचना भी विषमताके सिद्धान्तों पर स्थित थी। सामुराई (सम्राट् या समर-राय) नामकी क्षत्रिय जाति ही जन्मसे सब से श्रेष्ठ मानी जाती थी। शेष लोगों की मुख्य जातियां दो थीं। इन दो में से एक बिलकुलही नीच समझी जाती थी। यद्यपि इन लोगों की हालत ऐसी बुरी न थी जैसी अंत्यजों की है, तब भी वह उक्त क्षत्रिय जातिसे हजारगुनी हीन थी। परन्तु जपानियों ने देखा कि पश्चिम के लोगों की उन्नति समानता के सिद्धान्तों के कारण ही हुई है। और यह भी सोच लिया कि'यदि समानता का स्वीकार नहीं करते तो, सामुराई अत्यंत शूर क्षत्रिय हो तब भी संसारके जीवन संग्राम में ये अल्पसंख्यावाले ठिकाना न पा सकेंगे।

इसलिए दूसरों को ऊंचे बनाकर सब समानता के नाते एकसा बर्ताव करें। यह सोच, उन लोगों ने विषमताकी प्रथा एकदम त्याग दी। इस पूर्वीय भाई की उदारता का पारितोषिक ईश्वरने उसे दिया। और वह जापानी देश आज संसार भर मेंआदरणीय समझाजाता है।

(७) विषमता में पड़े लोगों के साथ जब एकाएक समानता का बर्ताव होने लगता है तब उनमें अपूर्व जोश उत्पन्न होता है। समाज के बोझ के नीचे दब जाने के कारण अबतक गुप्त हुए सामाजिक, राष्ट्रीय तथा मानवी सद्गुण अजीब रीतिसे बढ़ते हैं।

शारीरिक, मानसिक, नैतिक, तथा आत्मिक गुणोंका विकास होता है। यही हाल जापानियों के गुणोंका हुआ। हिन्दुओं में जो अंत्यज हैं उनके अलौकिक गुण भी बढ़ेंगे और आदरणीय होंगे, यदि उनसे उदारता का वर्ताव किया जावे। इसी लिये आवश्यक है कि उन लोगों की उन्नति की तथा उनके साथ बराबरीका वर्ताव करने की चेष्टा आरम्भ हो जावे।

सब प्रकार से यह बात आवश्यक एवं अनिवार्य सिद्ध होती है। यदि इसे करने के लिए धर्मशील हिन्दू तैयार हो जावें तो उन बेचारों की उन्नति के मार्ग की बड़ी भारी रुकावट दूर हो जावेगी। क्या देश के विद्वान लोग इस बात की ओर ध्यान देंगे?

भाग १६ वां ।

वहिष्कृतों की उन्नति का मार्ग ।

सिद्धान्तों की बातों के क्षेत्र से निकलकर अव हम कर्तव्य के. अर्थात् कार्य करने के क्षेत्र में पहुंचे हैं। मनुष्य की सच्ची परीक्षा इसी स्थान में होती है। सिद्धान्त के रूपमें या विचार में विश्व-बंधुता को माननेवाले लोग हिन्दू समाजमें हजारोंसे गिने जा सकते हैं। गीता के तथा उपनिषद् के समताके सिद्धान्तों को माननेवाले भी कम न होंगे; ये सब बातें शब्द-सागर के फेन के सदृश हैं। झंझावात चलकर आंधी आती है। उस समय समुद्र खलबला उठता है और चारों ओर श्वेत फेन उठता है। सागर के नील की जलकी सतह पर श्वेत बिंदु चमकने लगते हैं। परन्तु वायु शान्त हो जानेपर थोडे ही समय पश्चात् पुनः समुद्र का जल जैसा का वैसा हो जाता है। बस, इसी तरह, स्वपक्ष का समर्थन करते समय जितनी बातें व्याख्यान के समय कही जाती हैं, जिन समानता के सिद्धान्तों को उफान आती है वे सब विचार, वे सब बातें व्याख्याता महाशय तथा श्रोतागण अपने अपने मकानोंपर पहुँचते ही भूल जाते हैं। और विषमता की रूढ़ि में वे सब विचार समाजाते हैं। यह सिद्धान्तों के क्षेत्र का हाल है। परन्तु इसके आगे की स्थिति ऐसी सरल नहीं है। इस क्षेत्र में इस दूसरे बर्ताव को स्थान ही नहीं रहता। साधुवर्य तुकारामजीने कहा है.

" बोले तैसा चाले त्याचीं वंदावीं पाउलें। "

अर्थात् "जो मनुष्य अपने कहे के अनुसार आचरण भी रखता है वह साधुपुरुष है, अत एव आदरणीय एवं वंदनीय है।" जो

बात योग्य प्रतीत हुई, जो आवश्यक जान पडी, जो युक्ति की कसौटीपर कसनेपर सच्ची निकली, जो इतिहास के सिद्धान्तों से तथा दूसरे प्रमाणों से जांच ली गई और सिद्ध हुई, वह बात यदि आचरण में न लाई गई तो इतना परिश्रम उठाना फजूलही हुआ। यह तो स्पष्ट ही है कि उत्तम और आवश्यक बात तुरन्त ही आचरण में न लावें तो किसी भी समाज की प्रगति और बढती न हो सकेगी। प्रस्तुत विषय राष्ट्रीय, सामाजिक तथा धार्मिक आदि सब तरह से योग्य है, तथा अत्यंत आवश्यक है। इसी लिए हम आशा करते हैं कि हर एक मनुष्य इस दृष्टि से सुधार करने की ताकत भर चेष्टा करेगा। अब हम यह बताने का प्रयत्न करेंगे कि अछूतों के उद्धार एवं उन्नति के लिए कौनसे उपाय करना चाहिए।

अछूतों का उद्धार दो प्रकार से हो सकता है। एक उपाय यह कि सम्पूर्ण जनता पर उदारता के मतोंका संस्कार होना चाहिए, और दूसरे अंत्यजों के संस्कार कराकर उनकी उन्नति करनी चाहिए। पहले का अभाव रहते यदि केवल दूसरा ही किया जाय तो इष्ट फल प्राप्त न हो सकेगा। यदि जनता संकुचित विचारों को नहीं छोडेगी तो वह शिक्षित, सभ्य, विद्वान् तथा धनवान् अंत्यजों को भी अछूत समझेगी। पचास साल पूर्व विद्वान्, धनवान् तथा राजचिन्हों से भूषित साहब का स्पर्श होनेपर पुराने ख्यालात् के ब्राह्मण स्नान करते थे। इससे स्पष्ट है कि उक्त गुणों का काल्पनिक छूत-अछूत से कोई संबंध नहीं है। पिछले पचास सालों के संस्कारों से अब समय ने पलटा खाया है। यहां तक कि कहीं कहीं हिंदू और अंग्रेजों का रोटी-व्यवहार तथा बेटी-व्यवहार भी होने लगा है। यद्यपि यह बात सर्व साधारण लोगों में

प्रचलित नहीं है तव भी जनता अव उनके स्पर्श को पहले के समान दूषित नहीं समझती। इससे स्पष्टतया विदित हो जावेगा कि जनता के संस्कार को कितनी आवश्यकता है।

इस लिए पहला प्रश्न यह है कि संस्कार पहले पहल जनता पर किये जावें या पूर्णतया पीछे पड़ी हुई जातियों पर। इनमें यह संबंध नहीं है कि एक बात पहले करें और दूसरी उसके बाद। दोनों बातें साथ ही साथ चलनी चाहिए। यदि वे दोनों साथही साथ कुछ समय तक विना रुकावट के चलें तो एक समय अवश्य आवेगा जब अंत्यजों का वहिष्कार पूर्णतया नष्ट हो जावेगा। तात्पर्य यह कि लक्ष्य नजर के सामने हमेशा रखकर उसे प्राप्त करने की कोशिश दोनों प्रकार से साथ ही साथ करने की आवश्यकता है। अव विचार की सुविधा के लिए जनता के संस्कार का विचार प्रथम करेंगे और तदुपरान्त अन्त्यजों के संस्कार का विचार करेंगे। जनता के संस्कार के अनेक मार्ग हैं उनमें से कुछ मुख्य मार्गों का उल्लेख अव हम करेंगे।

१ सार्वजनिक व्याख्यान।

छूत-अछूत और दूसरी वहुतेरी बातें जो इस सामाजिक वहिष्कार से संवंध रखती हैं उनपर सार्वजनिक सभाओं में वाद विवाद, व्याख्यान, शास्त्र-संवंधी चर्चा होनी चाहिए। इसके साधक वाधक प्रमाणों की तथा हानि- लाभ की चर्चा जनता की भलाई के विचार से होनी चाहिए। इस प्रकार की सभाओं में अंत्यजों को हाजिर रहने के लिए वाध्य करना चाहिए। इनको ऐसी सभाओं का बुलौआ आग्रह से देना चाहिए

और उनके बैठने का प्रबंध अच्छी तरह करना चाहिए। इन लोगों को कहीं कहीं श्रोतृसमाज में मिलकर बैठने का मौका मिलेगा कहीं कहीं ऐसा मौका न भी मिलेगा। यदि उन्हे ऐसा मौका मिलेगा तो अच्छा ही है, यदि ऐसा मौका न मिला तब भी उसकी उन्हे परवाह न करनी चाहिए। उन्हे ऐसी सभाओं को जाना चाहिए, वहां जो कुछ होगा देखना तथा सुनना चाहिए। इस प्रकार दोनों पर संस्कार होता जावेगा। इसमें मुख्य बात यही है कि जिस जिस कारण से बहिष्कार करनेवाले तथा बहिष्कृत एक स्थान में मिल सकें ऐसी बातें होनी चाहिए। कोई कोई आक्षेप करेंगे कि हजारों सालों से मंदिर का एक कोना अंत्यजों को बैठने के लिए दूसरी जातियों के साथही मिलता रहा है। सार्वजनिक जलसे के समय दूसरे ग्रामवासियों के साथ अछूत लोग अपनी मर्यादा का पालन कर नियत स्थान में बैठते रहे हैं। इस प्रकार के कई शताब्दियों के संस्कार से उनको उन्नति नहीं हुई तो उनके सभामें आनेसे अबहो वह कैसे होगी? इसका जवाब यह कि मंदिर का जो कार्य था या है उसमें प्रस्तुत ध्येय को स्थान नहीं था। जो प्रश्न कभी उठा ही नहीं उस के हल न होने में आश्चर्य ही क्या? हम जिन सभाओं या व्याख्यानों के विषय में लिख रहे हैं उसमें यही बात मुख्यतः आवेगी। और इस बात का विचार नवीन सभ्यता के प्रकाश में होगा। इसलिए वर्तमान समय की सभा मंदिरों के समान बेकाम न सिद्ध होंगी। सारांश यह कि जिन उपायों को हम काम में लाना चाहते हैं उनमें से एक यह है। दूसरे प्रयत्नों से भी इस काम की पुष्टी होगी।

२ सामयिक पत्र और पुस्तकें।

इस विषय में अखवारों में बार बार चर्चा होनी चाहिए, तथा इस विषय की छोटी वडी पुस्तकें समय समय पर छपकर प्रकाशित होनीं चाहिए। व्याख्यानों की अपेक्षा ये उपाय कुछ वातों में कम योग्यता के हैं, तथ भी कुछ वातों में उनसे ये अधिक योग्यता रखते हैं। अखबार तथा पुस्तकों से जो संस्कार होगा वह किसी एक व्यक्ति को होगा। परन्तु एक स्थान में सम्मिलित होने से जो संस्कार होते हैं वे सभाओं से ही हो सकते हैं दूसरी किसी बात से नहीं। विषय की जागृति और मन की तैयारी पुस्तकों के प्रचार से ही होनी है। इसलिए इस वातको ओर ध्यान देना आवश्यक है।

उक्त दो उपाय जनता की ओरसे विना रुकावट के कर सकते हैं। समाज में विशेष सनसनी न पैदाकर समाज के मन शिक्षित करने का यह उपाय है। परन्तु जो लोग विचार, उच्चार तथा आचार में फरक नहीं पडने देते, तथा इन वातों में एकसे रहने का प्रण कर लेते हैं उन कर्मवीरों के लिए इससे जोरदार रास्ता चाहिए। ऐसे लोगों के आचरण समाज में वडी सनसनी पैदा कर देते हैं। ऐसा होने से कोई आत्यंतिक नुकसान नहीं है। क्षणभर के लिये प्रतिक्रिया होगी,परन्तु दूसरे सुसंस्कारों के कारण वह वहुत दिन टिक न सकेगी। इस प्रकारकी वातों को अव देखें।

३ प्रीतिभोज या सहभोज।

व्रह्मसमाज, प्रार्थनासमाज तथा आर्यसमाज के अनुयायी जातिभेद को नहीं मानते और प्रीति-भोज या सब लोगों का एक

साथ भोजन करांते हैं। पहले कह आये हैं कि 'धर्माज्ञा के अनुसार शूद्र द्विजों के घर भोजन बनावें।' तब उपर्युक्त काम करना धर्म के अनुकूल किन्तु रूढि के प्रतिकूल हैं। इस प्रकार जब सहभोजन होता है तब उसकी रिपोर्ट अखबारों में छपती है। इस प्रकार बात समाज में ज़ाहिर हो जाने पर समाज में उसके संबंध में भली या बुरी चर्चा होती है। कोई ऐसी बातों के अनुकूल बोलते हैं, कोई प्रतिकूल बोलते हैं। इस प्रकार की चर्चासे एक एक संस्कार दृढ रूपसे समाज पर होता जाता है।

४ सम्मेलन।

छूत अछूत को अलग रखकर उक्त संप्रदाय के लोग जो संमेलन कराते हैं और दूसरे दूसरे समाज भी जो संमेलन कराते हैं, उनसे जनतापर इष्ट परिणाम होता है। इस लिए ऐसे सम्मेलन बारबार होवें।

५ परिचारक।

जब घरेलू काम के लिये नौकर रखने की आवश्यकता होती है, तब यदि समान योग्यता के ऊंच और नीच जाति के नौकर मिलते हों तो उनमें से नीच जाति के नौकर कोही रखलेना चाहिए।

६ बेटी-व्यवहार।

यदि नीच जाति का युवक गुणवान् है तो उसे केवल इस लिये न त्यागना चाहिए कि वह नीच जाति का है, किन्तु उसके साथ अपनी लडकी का विवाह करने में पीछे न हटना चाहिए। हीन जाति के लोगों से विवाह करने की आर्योंकी प्राचीन प्रथा फिर

शुरू करना चाहिए। ऊंचे वर्ण के मनुष्य को नीचे वर्ण की स्त्रीसे विवाह करनेका अधिकार शास्त्रोंने दिया ही है। यदि केवल इसी अधिकार का उपयोग किया जावे तब भी बहुत काम होगा। ऐसा होनेपर यह प्रश्न न उठेगा कि ऊंची जातिकी कन्या नीची जातिके किन्तु गुण कर्मसे श्रेष्ठ युवकसे व्याही जावे या नहीं। चातुर्वर्ण्य यदि गुण-कर्म के अनुसार माना जावे तो जातिकी उच्च नीचता नष्ट हो जावेगी। इसलिए ऊंचा-नीचा पन गुणकर्मों से निश्चित किया जावे और जाति की कल्पना को त्यागकर प्राचीन धर्म के अनुसार बेटी-व्यवहार शुरू किया जावे। जाति की समानता की अपेक्षा गुणों की समानता पर ही अधिक ध्यान देना चाहिए।

ऐसे व्यवहारों से ऊंची श्रेणी के लोगों ने बहिष्कृत जातियों की उन्नति में लग जाना चाहिए। ऐसे आचरण से बहिष्कृतों की उन्नति होती है, और जनता में इस बात की चर्चा होकर इसे पक्का बनने का मौका मिलता है। केवल शब्दों के आडम्बर की अपेक्षा निश्चित विचारों के अनुसार आचरण करने का लोगों पर अच्छा असर होता है। इन बातों में सरकार के भी कुछ कर्तव्य हैं। उनकी ओर ध्यान न देने से भी काम न चलेगा।

७ सरकारी नौकरी।

जातिका ख्याल न कर योग्यता के अनुसार सब लोगों को नौकरी देना। अंत्यजों के सम्बन्धमें सरकार का लक्ष्य बिलकुल ठीक नहीं है। कुछ समय पहले अंत्यजों को फौज में भरती करते थे। पर अब यह भरती बंद कर दी गई है। धर्म तथा जाति-भेद के विषय में उदासीन रह कर गुणों के अनुसार लोगों को नौकरी देने का सरकार का विचार ठीक था। उसमें जाति के

संबंध में बदल करने की आवश्यकता न थी। सरकार जैसी द्विजों की बाप-मा है वैसे ही अंत्यजों की भी है। सरकारने अंत्यजों की उन्नति की रास्ता खुली की थी उसे फिर बंद कर देना उचित नहीं। नरमदल के लोगों को चाहिए कि वे सरकार को सलाह दें कि वे दरवाजे अंत्यजों के लिए खुले कर दिये जांय। देशी रियासतों के हिन्दू शासकोंको भी इस ओर ध्यान देना परम आवश्यक है। हिन्दुस्थान का बहुत भाग उनके अधिकार में है; इसलिये वहां के अंत्यजों का सुधार करने का उत्तरदायित्व उन राजाओं पर है। रियासतों में वे ही प्रथाएं जारी रहतीं हैं जो प्राचीन समय से चलीं आतीं है। अंत्यजों को सरकार की कचहरी के पास कूरेकचरेपर खडे रहना पडता है फिर धूप हो चाहे पानी बरसता हो। इन सब बातों में रियासतों के अधिपतियों को जल्दही सुधार करने चाहिए। उन लोगों की योग्यता के अनुसार उन्हें अंग्रेजी मुल्क में या रियासतों में नौकरी देनी चाहिए। और नहीं तो इतना अवश्य हो कि दूसरे अपढ लोगों को जो जो छोटी या बडी नौकरी मिलती है वह इन्हें भी मिलनी चाहिये। कोई सरकार इस प्रकार का जाति के विषय का पक्ष-पात न करे।

८ सरकारी कचहरियां।

सरकारी दफ्तर सब लोगों को एकसे खुले रहने चाहिए। अंग्रेजी दफ्तर हो या रियासतका हो उसमें आने-जाने का हक सबको एकसा होना चाहिए। परन्तु बडे दुःख की बात है न्याय कचहरी, पुलीस चौकी, और दूसरे दफ्तरों में भी अंत्यजों को दूसरों के साथ बराबरी से बैठने का हक नहीं है। सरकार करों की वसूली जात-पात, धर्म आदि को अलग रखकर करती है, तब

उन करों के बलपर चलने वाली संस्थाओं में पक्षपात क्यों हो? इस अन्याय का विचार जनता के हित की दृष्टि से अवश्य होना चाहिए।

९ सार्वजनिक संस्थाएं।

सरकारी अस्पताल, सरकारी स्कूल, पोस्टआफिस, तार आफिस आदि सार्वजनिक संस्थाओं में अंत्यजों के साथ दूसरों के सदृश वर्ताव किया जाना चाहिए। वे दूर खडे किये जाते हैं और इसीसे उनकी बात जल्द नहीं सुनी जाती; यदि अंत्यजों के बालक सरकारी स्कूलों में जावें तो उनकी भरती बिना अडचन के होनी चाहिए और उनको दूसरे लडकों के साथ बिठलाना चाहिए। इस प्रकार की बातें अभी चालू नहीं हैं। जिन संस्थाओं में सब लोग समानता से प्रवेश नहीं कर सकते उसे 'सार्व-जनिक संस्था' किस बुनयाद पर कह सकते हैं? इस बात का विचार होकर यह अन्याय जल्द ही बंद होना चाहिए। सार्व-जनिक पैसे से चलनेवाली सब प्रकार की संस्थाओं में सब लोगों का प्रवेश समानता से होना ही उचित है।

१० म्युनिसीपेलिटी।

जो संस्थाएं म्युनिसिपेलिटी द्वारा चलाई जातीं हैं, उनमें भी इसी प्रकार का पक्षपात होता है। सरकारकी गलती का ही अनुकरण इस नागरिकोंकी संस्थाने किया है। परन्तु वह निंद-नीय है। इसलिए इस संस्था के द्वारा चलाए हुए जनता के हित के कामों में जातिके संबंध का पक्षपात न होने देना चाहिए।

सच बात तो यह है कि जब तक म्युनिसिपेलिटी के समान

बहु-मत से चलनेवाली संस्थाओं में जबतक उदारविचार के मनुष्य अधिक संख्या में न होंगे, तब तक ये सुधार नहीं हो सकते। और उदार विचार के लोग अधिक संख्या में तब तक नहीं हो सकते जब तक जनता पर संस्कार न हों। परन्तु इस दिशा में अभी से कडी कोशिश हो तो कुछ काल बाद समता का प्रचार अवश्य ही हो जावेगा। यदि आरंभ ही न हुआ तो वह बात कभी भी सिद्ध न होगी। इसीलिए इस बात की कडी कोशिश करने की आवश्यकता है।

सौभाग्य की बात है कि रेलों में यह पक्षपात नहीं है। तीसरे दर्जे के यात्रियों में जैसे यूरोपीयन और यूरेशियन लोगों के लिये एक डब्बा अलग रखा जाता है, उसी प्रकार अंत्यजों के लिये नहीं रखते यह एक सौभाग्य की बात है। जिसके पास टिकट रहता है वह गाडी में हक के साथ बैठ सकता है फिर चाहे वह अंत्यज हो चाहे ब्राह्मण हो। इसी प्रकार सरकार की चलाई सार्वजनिक हित की संस्थाएं पक्षपातहीन होनी चाहिए।

[११] कानून की मदद।

किसी किसी बात में सरकारको चाहिए कि कानून बनाकर मदद करे। अंग्रेज सरकार तथा रियासत की सरकार दोनों को इस बात में मदद करनी चाहिए—

(अ) विवाहका कानून- सवर्ण विवाह के समान ही अनुलोम तथा प्रतिलोम (अर्थात् भिन्न भिन्न जातियोंके) विवाह जायज समझे जाने चाहिये। इन विवाहोंके कारण वारिसके संबंध के जो झगडे होने की संभावना है वह मिटा देनी चाहिए।

(आ)यदि सार्वजनिक स्थान में आना अंत्यजों को या उनके समान दूसरे लोगों को, इसलिए मना किया हो कि वे हीन जाति के हैं, तो इन लोगों को अपने विषय में न्याय मिलने के लिये कानून का आधार होना चाहिए।

इस प्रकार समाज के संस्कार के लिये क्या कर सकते हैं इस बात का विचार हुआ । इनमें से शांतज्ञासे तथा आपस के मेलसे जितना अधिक काम हो. सरकारी मददके विना जितना काम हो-उतना अच्छा है। इससे लाभ अधिक होगा। अब अंत्यजों कि जाति के संस्कार का विचार करेंगे। -

१२ शिक्षा ।

अंत्यज तथा उनके समान दशावाले दूसरे लोगोंकी उन्नति करने की जिनकी अभिलाषा है उनको चाहिए कि वे इन लोगों को लिखना, पढना सिखाने की कोशिश करें। लडके तथा लडकियोंके लिये गांव गांव में पाठशालाएं खोली जावें तथा बडों के लिए रात्रि के समय पढाई की जावे। बालकों के पाठशालाओंमें सब विषय पढाए जा सकते हैं परन्तु काम करनेवाले बडे मनुष्योंके लिए रात्रि के वर्गों में शुरू शुरू में केवल लिखना पढना ही सिखाना चाहिए। ज्ञान अमृत है। उसका सूक्ष्म मात्रा में भी सेवन करनेसे लाभ अवश्य होगा। ज्ञान ग्रहण के मुख्य साधन लिखना, और पढना हैं। इसलिये अंत्यजों के उद्धार के लिये इस संबंध में कसके परिश्रम किये जाने चाहिए।

जो उमर में बडे हैं उनके लिये रात्रि की क्लासें खोलने से और एक लाभ होना संभव है। अंत्यजों में अज्ञान के कारण मद्यपान का व्यसन बढता जा रहा है। यह मद्यपान प्रायः संध्या के समय किया जाता है। उसी समय क्लासें लगेंगी और उनकी पढाई

ऐसी होगी जिससे धार्मिक भावना के बढनेमें उत्तेजना दी जावे, तो—यद्यपि शुरू में यह परिणाम शीघ्र न दिखाई देगा तब भी कुछ समय बीत जाने पर—उनके मद्यपान में कुछ कमी हो जावेगी। इसलिये अंत्यजों के मुहल्लों में रात्रिके समय क्लासें खोलने से इस प्रकार दुहरा लाभ होगा। इसके सिवा सीखने के लिए इकट्ठे हुए लोगों को मद्य-पान छोडने का उपदेश तथा धर्म के संबंध में उपदेश करने का मौका मिलेगा।

अब यह सवाल होता है कि इन स्कूलोंमें या क्लासों में पढावे कौन? वर्तमान समय में कहीं कहीं इस प्रकार के स्कूलों में मुसलमान शिक्षक रखा जाता है। इसका कारण यह कि ऊंची जाति का हिन्दु ऐसे स्कूलों में जाकर पढाने के लिये तैयार नहीं होता। यह बात हिन्दु कहलानेवाले आर्यों के वंशजों को लांछन है। अपने जात भाइयों को, धर्म-बन्धुओं को, देशबन्धु ओं को विद्यादान करने में रोकना हिन्दुधर्म का कार्य नहीं है। हिन्दुओं के वैदिक धर्म में वह तेजस्विता है कि वह अपने धर्म के ही नहीं दूसरे धर्म के अनुयायियों को भी शुद्ध तथा पवित्र बना लेता है। इस की ओर ध्यान न देकर अपने धर्म-बन्धुओं को उन्नत करने का मौका खोना कदापि उचित नहीं! विद्या-दान ब्राह्मणों का कर्तव्य है। धर्मके अनुसार उन्हे इस कर्तव्य का पालन अत्यंत आवश्यक है। यदि वे अपना कर्तव्य न करेंगे तो वे कर्म-भ्रष्ट होंगे। इससे ब्राह्मणों तथा उच्च वर्णके लोगों को ही यह कार्य करना चाहिए। स्वधर्म का उपदेश पर-धर्मी किस प्रकार कर सकते हैं? इस बात को सोचकर स्वधर्म बंधुओं को उन्नति के लिये हिन्दूमात्र को खुदही लग जाना आवश्यक है। जिस ग्राम में अछूत के कुसंस्कारों के कारण

हिन्दू शिक्षक मिल न सकेंगे वहां केवल दूसरा कोई उपाय नहीं है। इससे दूसरे धर्मियों को शिक्षक रखना चाहिए।

वास्तव में इनके बालकों को सरकारी स्कूलों में ही शिक्षा दी जानी चाहिए। इनके लिए अलग स्कूल खोलना भेद की जागृति करने के समान है। इससे जहां जहां बन सके वहां विद्यमान पाठशालाओं में ही इनको भरती करने की कडी कोशिश करनी चाहिए। जहां इस प्रकार भरती नहीं हो सकती वहां ऊपर के अनुसार प्रबंध करना चाहिए।

१३ पुस्तकमाला।

जब अंत्यज लिख, पढ सकने के योग्य हो जावें तब उनके पढने के लिए खास पुस्तकें बनवाई जावें और उन पुस्तकों का प्रचार उन्हीं लोगों में किया जावे। ये पुस्तकें जहां तक बने मुफ्त में बांटी जावें और यदि यह न हो सके तो उनकी कीमत बहुत ही कम रखी जावे। इन पुस्तकों में इन लोगों की उन्नति का ही हाल लिखा जावे। अंत्यज कुल में जो बडे बडे साधु हुए हैं, जिन लोगोंने अपनी जिंदगी अंत्यजों के उद्धार के उचित प्रयत्न में बिताई हो ऐसे सत्पुरुषों के जीवन-चरित्र, धर्म-उपदेश, सरल धार्मिक कहानियां आदि विषयों पर पुस्तकें होनी चाहिए। इन पुस्तकों की भाषा सरल हो, और इनके पढनेसे इन लोगोंको अपने कर्तव्य, नागरिकता आदि का बोध होना चाहिये।

१४ धर्मोपदेशक।

अंत्यज और उनके समान दूसरे बहिष्कृत लोगों में धर्म का उपदेश करने के लिये धर्मोपदेशकों की आवश्यकता है। इनको

चाहिए कि वे अंत्यजों के मुहल्लों में जाकर हफ्ते में एक या दो दिन अपने धर्म संवंधी कर्तव्यके विषय में व्याख्यान दें इन सभाओं का प्रवंध उन्हीं में से जो शिक्षित लोग हैं उन्हे करना चाहिए।

१५ स्वच्छता।

अंत्यज तथा वहिष्कृत लोगोंका मुहल्ला तथा उनके मकान गांव भरमें अधिक अस्वच्छ और खराव रहते हैं। मकान आंगन, वर्तन, कपडे आदि सव कुछ अस्वच्छ रहता है। इस प्रकार रहने से उनमें रोग अधिक हुआ करते हैं। दूसरी जातियों की अपेक्षा इनका स्वास्थ्य खराव रहता है। इसका नमूना मर्दुम-शुमारी से मिलता है।

बम्बई अहाता।

जाति	परीक्षा किये हुए कुल लोग।	परीक्षा किये हुओं में महारोगियों की संख्या.
(१) ब्राह्मण	१,००,०००	६
(२) युरेशियन	,,	३१
(३) महार, धेड	,,	८८
(४) मराठे(क्षत्रिय)	,,	७७

वरार

(५) गडरियें	१७,७१६	२३
(६) कुनवी	१,८७,२०३	२५९
(७) महार	९६,३८१	८६
(८) पठान	१२,७७०	११

मध्यप्रदेश।

(९) भील	२३,११०	६
(१०) ब्राह्मण	३,९१,५१९	८४
(११) चमार	२५,२६२	३८६
(१२) तेली	७,१२,१७०	६७०

मद्रास अहाता।

(१३) ब्राह्मण	११,९८,९११	३९५
(१४) युरेशियन ...	२६,२१०	२७
(१५) होलिया (धेड)	१,४७,९८७	१२८
(१६) कामाठी ...	४,२८,१८८	१३९

इससे मालूम होता है कि इन लोगों का शरीर स्वास्थ्य असंतोष- जनक है। यह आवश्यक है कि ये लोग स्वच्छता से रहना सीखें और मकान, आंगन कपडा-लत्ता, बर्तन-भांडे आदि स्वच्छ रखने का शौक इनमें उत्पन्न हो। इनकी अस्वच्छ रहन-सहन इनके बहिष्कार को और भी अधिक तीव्र करती है। यदि ये लोग स्वच्छतासे रहने लगें तो इनसे व्यवहार करने में लोगों को बहुत सुभीता होगा। माना कि ऐसी स्वच्छ और झकपक रहन के लिए द्रव्य की आवश्यकता है किन्तु केवल स्वच्छता पूर्ण दरिद्रता में भी रखी जा सकती है। हाँ, एक बात अवश्य है कि ऐसी रहन के लिये छुटपन ही से आदत चाहिये। इन लोगों को स्वच्छता के नियम समझाये जाने चाहिये और इन नियमों के अनुसार उनसे वर्ताव करा लेना चाहिये। जब तक इन बातों की उन्हे आदत नहीं होती तबतक उन्हे भी यह बडा कडा कार्य मालूम होगा परन्तु उन्हे इस सफाई के सहन की आदत

पड जाने पर उन्हे खुद ही इस अस्वच्छ रहनसे घृणा उत्पन्न होगी और वे अच्छी और सफाई की रहन-सहन का स्वीकार करेंगे । इस कारण शिक्षा देनी चाहिये जिससे वे अपने शरीर को, घर को और मोहल्ले को स्वच्छ रखें ।

१६ उद्योग-धन्धों का नवीन मार्ग ।

गरीबी के कारण तथा अनेक शतकों से विपत्ति में पडे रहने कारण इन लोगों के धन्धों का बडा बुरा हाल हो गया है। यह स्थिति सुधारने की कडी कोशिश होनी चाहिये । चमडेका, बाँस का और बेंतका रुजगार बहुत फायदेमंद है। किन्तु इनकी दरिद्रा-वस्था के कारण और अज्ञान के कारण ये लोग उससे कुछ भी लाभ नहीं उठा सकते । उन्हे दूसरे रुजगार करने की इजाजत नहीं है । यह रुकावट निकाल देनी चाहिये । उनके अनु-वंशिक रुजगार में संघ-शक्ति से प्रथम सुधार करना चाहिये । इसके बाद उन्हे द्रव्य की सहायता करनी चाहिये । यदि केवल उनके अनुवंशिक रुजगार में ही सुधार किया जावे तब भी बहुत लाभ होगा ।

१७ ऊँची शिक्षा का प्रबन्ध ।

ऊपर लिखी हुई बातों के साथ ही अन्त्यजों के होशियार और बुद्धिमान लडकों को ऊँची शिक्षा देने का प्रबन्ध भी होना आवश्यक है । यदि इस प्रकार का प्रबन्ध बहुत बडी मात्रा में होना असम्भव और अनावश्यक हो तो उसे अल्प मात्रा में ही क्यों न हो करना चाहिये । विश्वविद्यालय की परीक्षामें उत्तीर्ण होने तक अन्त्यजों के होशियार और बुद्धिमान विद्यार्थियों

को शिष्य-- वृत्तियाँ मिलने का प्रवन्ध होना चाहिये। यदि इस प्रकार तैयार हुए उपाधिधारी अन्त्यज मिलें तो वे अपनी जाति के उद्धार का काम बडे उत्साह से करेंगे।

अन्त्यजों के लिये किसी प्रकार की शिक्षा-प्राथमिक या उच्च-अनिवार्य न होनी चाहिये। उन्हे कुछ प्रलोभन देकर उनका चित्त आकर्षण करके ही उन्हे विद्यादान करना होगा। किताब मुफ्त देना, लिखने का दूसरा सामान मुफ्त देना, मासिक शिष्य-वृत्ति देना आदि सौम्य उपायों से ही उनका चित्त शिक्षा की ओर आकर्षित हुआ तो फिर अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा शुरू करनी चाहिये।

सब कु-संस्कारों के लिये सु-शिक्षा अद्वितीय उपाय है। अपनी रूढि में फँसे हुए लोगों में जैसे जैसे विद्या का प्रसार होगा और उनमें उदार भावों की जैसे जैसे वृद्धि होगी वैसे ही वैसे जाति विशेष के बहिष्कार की निन्दनीय प्रथा उठ जावेगी। सब जनता के लिये प्राथमिक शिक्षा अनिवार्य करने के दिन अब आगये हैं। यदि सब लोग लिखना पढना जानने लगें तो ग्रन्थों का प्रसार करने से उनमें उदार विचारों का भी प्रसार हो सकेगा। ऐसा होनेपर अब के समान अडचने अछूतों के उद्धार में नहीं होंगी। परन्तु जब तक ऐसी परिस्थिति उत्पन्न नहीं हुई तब तक इस दिशा में परिश्रम और उत्साह से काम करनेवाले धार्मिकों की आवश्यकता है। ऐसे धार्मिक पुरुष हमारे हिन्दू धर्म में उत्पन्न हों और वे अपने धर्म बांधवों के उद्धार का पवित्र कार्य उत्साह से करें यही ईश्वर से प्रार्थना है।

भाग १७ वाँ।

उपसंहार।

(१) यद्यपि छूत-अछूत का भेद उत्पन्न करनेवाला प्रकार योग के नियमों के कारण उत्पन्न हुआ है, तब भी अब उसे इसी प्रकार आगे चलाने की आवश्यकता नहीं रही। क्यों कि प्राचीन काल सदृश अब योग का सार्वत्रिक प्रसार है भी नहीं और होना सम्भव भी नहीं। जिस किसी को योग साधन की आवश्यकता है वह अपने लिये अलग प्रबन्ध कर लेवे। उस अकेले के लिये समाज में विभिन्नता उत्पन्न करनेवाली प्रथा का जारी रखना अपाय-कारक अतएव अनिष्ट है।

आर्योंने जेतृत्व के अहंकार के कारण अनार्यों पर इस प्रकार का बहिष्कार किया होगा, किन्तु उसे अनन्त काल तक जारी रखना अहितकारी है। क्यों कि अब तो आर्यों का जेतृत्व ही नष्ट हो गया है। वर्तमान समय में आर्य और अनार्य जितत्व के एक ही रस्से में बन्धे हैं। जिस समय जेतृत्व का तेज चमक रहा था उस समय शुरू की हुई बातें जित हो जानेपर भी कायम रखना शोभा नहीं देतीं। वे दिन गये, वह अभिमान का कारण नष्ट हुआ और वह तेजस्विता भी नहीं रही! अब तो आवश्यकता है नई पद्धतिसे भविष्यत् में उत्साह से काम करने की। ऐसी दशामें सब लोगों को उचित है कि वे समतासे व्यवहार करें।

व्यापार के संघों के कारण जाति विशेष के बहिष्कार बड़े जोरों से चलते थे। किन्तु आज व्यापार अपने हाथों से निकल गया है,

उद्योग-धन्धे खुली रीति से डूब गये हैं, कारीगरी लुप्त हो गई है और वंशपरंपरा के नियमों का पालन कितनी ही कडी रीति से क्यों न किया जावे तब भी वर्तमान जीवन संग्राम में प्राचीन भिन्नतामूलक रहन-सहन से लाभ होनेकी सम्भावना बिलकुल नहीं है। ऐसे समय में प्रत्येक मनुष्य को अपने समाज की सुस्थिति के लिये दृढीकरण के उच्च कार्य में जातिके सम्बन्ध के भेद-भावों का बलिदान कर देना चाहिये। और उन्हे समता की धार्मिक भावनाओं को अपनाना चाहिये ।

अन्त्यज जातियों को चाहिये कि वे अपनी हीनता के विचारों को छोड दें। वें अपने हृदय में यह भाव न लावें कि वे हीन ही रहेंगे। वैष्णव-धर्म-प्रतिपादक परमहंस परिव्राजकाचार्य श्री रामानुजाचार्यजी ने आठसौ वर्ष पहले अन्त्यजों का नाम "तिरुक्कुल-तार"(उच्च कुलोत्पन्न) रखा था। इस बात की ओर ध्यान दे कर अन्त्यजों को यह आकांक्षा रखनी चाहिये कि व उच्च कुलात्पन्न हैं, श्रेष्ट होने की योग्यता वे फिरसे प्राप्त करेंगे और प्रयत्न से हम अपनी उन्नति कर लेंगे। मिरासी (हकदार), नाक (नायक) सदृश अन्त्यजों के जो नाम हैं, वे उनका प्राचीन काल का हक बताते हैं। इनकी ओर उन्हे अब लापर्वाही नहीं बतलानी चाहिये। उन्हे ध्यान देना चाहिये कि इच्छा रहने पर मार्ग मिलता ही है। आज दिन तक जितने साधु और महत्मा इस संसार में हुए हैं वे सब इन्ही बहिष्कृत तथा दुःखियों के पक्षपाती हुए हैं। इन दुःखियों के हकों को न माननेवाला, उनकी ओर से मुंह मोडनेवाला कोई एक भी साधु नहीं हुआ। इस प्रकार अपनी सामर्थ्य को समझ कर उन्हे चाहिये कि धीरज और विश्वासके साथ उन्नति के मार्ग में अपना पैर आगे बढावें।

(२) भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी सदृश योगेश्वर गुणकर्म के अनुसार वर्णव्यवस्था को मानते हैं, भगवान बुद्ध सरीखे महात्मा सम्पूर्ण मनुष्य समाज को एकसमान समझते हैं, श्रीरामानुज जैसे आचार्य अन्त्यजों को भी उच्च मानने के लिये तत्पर हैं, भागवत और वैष्णव मत के लोग इसी कार्य के लिये अवतार लेकर उचित मार्ग से काम कर गये। इन महा पुरुषों की इच्छा-शक्ति इस कार्य के लिये सहायता करती है। इसीलिये इस दिशामें कार्य करनेवालों को तथा जिन के लिये यह काम किया जावेगा उन्हें निरुत्साही होना नहीं चाहिये। इसके उपरीत उन्हे चाहिये कि वे उस मार्गसे चलने में जिसे संत-महन्तों ने बनाया है रूढि के बन्धनों को तोड दें। उन महात्माओं की स्मृति कायम रखने का यही उत्कृष्ट साधन है। इस प्रकार के उच्च काम में उन्हे महात्माओं की इच्छाशक्ति की मदद अवश्य ही होगी।

(३) कोई भी सुधार धीरे धीरे करना चाहिये या एकदम करना चाहिये? यह प्रश्न वारवार पूछा जाता है। इस प्रश्न पर साधारण रीतिसे विचार पिछले पृष्ठों में हो चुका है। यहाँ केवल इतना ही कहना है कि जनता में तीन प्रकार के लोग रहते हैं। उन सबको एकही नियम से जकड देना चाहें तो वह नहीं हो सकता। भविष्य में व्यक्ति की स्वतन्त्रता पर ही लोगों का अधिक ध्यान रहेगा। लोगों की इस प्रवृत्ति का नियमन असम्भव है। मनुष्यों में (१) उतावले, (२) शान्त और (३) उदासीन तीन प्रकार के लोग हैं। उतावले कोई भी बात मन में आनेपर उसी क्षण बोल देते हैं और करने लगते हैं। शान्त-वृत्ति के लोग आगे-पीछे का विचार करके अपना मार्ग धीरे धीरे तय करते हैं। और उदासीन लोग कोई भी बात अपने आप होने

की राह देखते रहते हैं। ये तीनों वृत्तियाँ परस्पर भिन्न हैं इससे उनके मार्ग भी भिन्न हैं। सुधार के काम में पहले दो प्रकार के लोगों की आवश्यकता होती है। काम धीरे धीरे करिये या एकदम करिये सुधार होने की आवश्यकता है इस बात को लक्ष्य करके काम में लग जाना अच्छा है। पहिली वृत्ति में प्रमाद होने की सम्भावना है इससे साधारण जनता में कार्य करने के लिये दूसरी वृत्ति उत्तम है। किसी भी प्रकार से हो उदासीनता से लोगों को अलग कर पहली दो वृत्तियोंमें से किसी एक में ले आना चाहिये। काम बड़ा है। उसमें परिश्रम कड़े करना होंगे। उसमें वारंवार विघ्न बाधाएँ उपस्थित होंगी और निराश होने के कई मौके आवेंगे। परन्तु जिस मार्ग को महान् साधु पुरुषों ने अपने चरणरज से पवित्र किया, उससे अच्छा मार्ग दूसरा कैसा हो सकता है? परमेश्वर से प्रार्थना है कि वह हिन्दुधर्मियों को इसी मार्गपर चलनेकी बुद्धि दे। सारांश यह कि भेद-अभेद मानना भ्रम-मूलक है। मुझे आशा है कि इस बात की ओर ध्यान देकर नीचे लिखे शास्त्र वचनों पर विचार करके सूज्ञ बन्धुगण समाज के हित के लिये दिलोजान से कोशिश करेंगे।

> एक एव पुरा वेदः प्रणवः सर्ववाङ्मयः।
> देवो नारायणो नान्यः एकोऽग्निर्वर्ण एव च ॥ ४ ॥
>
> श्रीमद्भागवत पु. स्क.९।१४

"प्रथम एक वेद, सर्व वाङ्मय प्रणव (ओंकार), एकही अद्वितीय नारायण देव, एक अग्नि और एक ही वर्ण था।"

> एकवर्णमिदं पूर्वं विश्वमासीद् युधिष्ठिर।
> कर्मक्रियाविभेदेन चातुर्वर्ण्यं प्रतिष्ठितम् ॥
> सर्वे वै योनिजा मर्त्याः सर्वे मूत्रपुरीषजाः।
> एकेन्द्रियेन्द्रियार्थाश्च तस्माच्छीलगुणैर्द्विजः ॥

शूद्रोऽपि शीलसम्पन्नो गुणवान् ब्राह्मणो भवेत् ।
ब्राह्मणोऽपि क्रियाहीनः शूद्रात् प्रत्यवरो भवेत् ॥

--महाभारत वनपर्व अ० १८०

' हे युधिष्ठिर राजा! इस जगत् में-इस संसार में-पहले एक ही वर्ण था। आगे चलकर गुण और कर्म के विभाग के कारण चातुर्वर्ण्य उत्पन्न हुआ। सब मनुष्य योनिसे ही उत्पन्न हुए हैं, सब लोग मूत्र-पुरीष के स्थानसे ही आये हैं। सब की इन्द्रियवासनाएँ समान हैं। इसीलिये जन्मतः जातिभेद मानना उचित नहीं। इसलिये शील की प्रधानता से ही द्विज (ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य वर्ण) होते हैं। यदि शूद्र शीलसम्पन्न हो तो उसे गुणवान् ब्राह्मण समझना चाहिये और ब्राह्मण यदि क्रियाहीन हो तो वह शूद्रसे भी नीच जानो।

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुण-कर्म-विभागशः भ०गीता ४। १३

" मैंने गुण-कर्म के विभागों से चातुर्वर्ण्य उत्पन्न किया।"

समानी प्रपा सह वो अन्नभागः समाने योक्त्रे सह वो युनज्मि।
सम्यञ्चो अग्निं सपर्यत आरा नाभिमिवाऽभितः॥ ६॥

अथर्व० ३। ३०

" (हे मनुष्यों) तुम लोगों की पानी पीने की और भोजन करने की जगह एक ही हो। समान धुरा में मैंने तुम सब को समानतासे जोत दिया है। जिस प्रकार चक्र की नाभीमें आरे जमे रहते हैं उसी प्रकार तुम लोग एकत्र होकर अग्नि में हवन (और परमात्माकी उपासना) करो।"

संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्॥
देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते॥ २॥

ऋग्वेद. मं १०। १९१

*

" एक स्थान में इकट्ठे हो जाओ, संवाद करो, अपने मतोंको एक करो और जिस प्रकार पहले विद्वान अपने नियत कर्तव्य के लिये इकट्ठे होते थे, उसी प्रकार तुमभी हो।"

समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः सह चित्तमेषाम् ॥ ३ ॥
ऋ. मं. १० । १९१ ॥

" सबका मन्त्र समान, सबकी सभा समान सबका मन समान और इन सब का चित्त भी समान होवे।"

चत्वार एकस्य पितुः सुताश्च तेषां सुतानां खलु जातिरेका।
एवं प्रजानां हि पितैक एव पित्रैकभावात् न च जातिभेदः॥४५
फलान्यथोदुम्बर वृक्षजातेर्यथाऽग्रमध्यान्तभवानि यान्ति।
वर्णाकृतिस्पर्शरसैः समानि तथैकतो जातिरतिप्रचिन्त्या ॥४६॥
—भ. महापुराण उ. अ. ४२

"यदि एक पिता के चार लडके हों तो उन लडकों की वास्तव में एक जाति होनी चाहिये। इसी प्रकार सब लोगों का पिता एकही परमेश्वर है इससे मनुष्य समाज में जातिभेद बिलकुल नहीं है। एक ही गूलर के वृक्षके जिस प्रकार अग्रभाग मध्यभाग तथा पींड इन तीनों भागों में वर्ण, आकृति, स्पर्श तथा रस इन बातों में एकसे फल लगते हैं, उसी तरह (एक विराट् पुरुष के मुख बाहु, ऊरू, और पैर इन चार अंगों से उत्पन्न हुए) मनुष्यों में (स्वाभाविक) जातिभेद नहीं माना जा सकता।"

वर्णोत्कर्षमवाप्नोति नरः पुण्येन कर्मणा।
दुर्लभं तमलब्ध्वा हि हन्यात् पापेन कर्मणा ॥ ५ ॥
महाभारत शान्ति० अ० २१९

" पुण्य के कर्म करने से उच्च वर्ण प्राप्त होता है और पाप कर्मों से उच्च वर्ण की प्राप्ति तो नहीं होती पर नीचता प्राप्त होती है।"

जन्मना जायते शूद्रः संस्काराद् द्विज उच्यते ।
वेदाभ्यासी भवेद्विप्रः ब्रह्म जानाति ब्राह्मणः ॥

स्मृति ।

जन्मसे कोई भी शूद्र रहता है । संस्कार के कारण वह द्विज कहलाता है । यदि वह वेदाभ्यास करनेवाला हो तो वह विप्र होगा और जो ब्रह्म को जानता है वह ब्राह्मण है।

(४) अन्त में वैदिक धर्म का सार, वैदिक धर्म का मुख्य सिद्धान्त बतलानेवाली आज्ञा को लिखे बिना इस ग्रंथ को खतम करना उचित नहीं । वह आज्ञा इस प्रकार हैः –

दृते दृँह मा, मित्रस्य मा चक्षुषः सर्वाणि भूतानि स—
मीक्षन्ताम्॥ मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे ॥
मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे ॥ १८ ॥

यजुर्वेद. अ. ३६

" हे सर्व-सहायक परमात्मन्? मेरा (और हमारा) अभ्युदय करो, संपूर्ण भूतमात्र, सब प्राणिमात्र, सब मनुष्य मुझे (और हमें) मित्र की दृष्टि से देखें; मैं भूतमात्र की ओर मित्रता की दृष्टि से देखूंगा; और हम एकदूसरेको मित्र के नाते देखेंगे । "

सब लोग अपने मित्र हैं, अपने समान हैं। इस आत्मवत्सर्व भावसे वर्ताव करने की बुद्धि होकर, समता और विश्वबन्धुता की केवल कल्पना ही न रहकर इस ऊँची कल्पना के अनुसार आचरण होकर, जातिविशेष का सामाजिक बहिष्कार और तत्सदृश भेदोत्पादक अन्य रीतियाँ लुप्त होकर, समानता के उदार धर्मका प्रसार होवे । यही परमेश्वर से नम्र भाव से प्रार्थना है

॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

[स्वाध्याय मंडल द्वारा प्रकाशित]

वैदिक धर्मके ग्रंथ।

आगम निबंध माला।

वेद अनंत विद्याओंका समुद्र है। इस वेद समुद्र का मंथन करनेसे अनेक "ज्ञान रत्न" प्राप्त होते हैं, उन रत्नों की यह माला है।

(१) वैदिक-राज्य पद्धति। मू. ।-)
(२) मानवी आयुष्य। मू. ।)
(३) वैदिक सभ्यता। मू. ॥।)
(४) वैदिक चिकित्सा शास्त्र। मू. ।)
(५) वैदिक स्वराज्यकी महिमा। मू. ॥)
(६) वैदिक सर्पविद्या मू. ॥)
(७) मृत्युको दूर करनेका उपाय। मू ॥)
(८) वेदमें चर्खा। मू. ॥)
(९) शिवसंकल्पका विजय। मू. ॥।)
(१०) वैदिक धर्मकी विशेषता। मू. ॥)
(११) तर्कसे वेदका अर्थ। मू. ॥)
(१२) वेदमें रोग जंतु शास्त्र। मू. ≡)
(१३) ब्रह्मचर्यका विघ्न। मू. ≡)
(१४) वेदमें लोहेके कारखाने। मू. ।-)
(१५) वेदमें कृषिविद्या। मू. ≡)
(१६) वैदिक जल विद्या। मू. =)
(१७) आत्मशक्तिका विकास। मू. ।-)
(१८) वैदिक उपदेश माला। मू. ॥)

२ धर्म शिक्षा के ग्रन्थ।

बालक और बालिकाओंकी पाठशालाओंमें " धर्म शिक्षा " की पढाईके लिये तथा घरोंमें बालबच्चोंकी धार्मिक पढाईके लिये ये ग्रंथ विशेष रीतिसे तैय्यार किये हैं।

(१) बालकोंकी धर्म-शिक्षा।

प्रथमभाग। प्रथम श्रेणीकी धर्म शिक्षा के लिये।

मू.-)

(२) बालकों की धर्म-शिक्षा।

द्वितीय भाग। द्वितीय श्रेणीकी धर्म शिक्षा के लिये। मू. =)

(३) वैदिक पाठमाला।

प्रथम पुस्तक। तृतीय श्रेणीकी धर्म शिक्षा के लिये। मू ≡)

३ योगसाधन माला।

" योग साधन " का अनुष्ठान करने से शारीरिक आरोग्य, इंद्रियोंकी स्वाधीनता, मानसिक शक्तिका उत्कर्ष, बुद्धिका विकास और आत्मिक बलकी प्राप्ति होना संभव है। इस लिये यह " योग-साधन " हरएक मनुष्यको करने योग्य है।

१ संध्योपासना.

योग की दृष्टिसे संध्या करनेकी प्रक्रिया इस पुस्तक में लिखी है। मू० १॥) डेढ. रु०

२ संध्याका अनुष्ठान।

(यह पुस्तक पूर्वोक्त " संध्योपासना " में संमिलित है, इस लिये " संध्योपासना " लेनेवालों को इसके लेनेकी आवश्यकता नहीं है।) मू० ॥) आठ आने।

३ वैदिक प्राण विद्या ।

प्राणायाम करनेके समय जिस प्रकार "मनकी भावना" रखनी चाहिये, उसका वर्णन इस पुस्तकमें है। मू. १) एक रु.।

४ ब्रह्मचर्य ।

इस पुस्तकमें "अथर्ववेदीय ब्रह्मचर्य सूक्त का विवरण है। ब्रह्मचर्य साधनके योगासन तथा वीर्यरक्षण के अनुभवसिद्ध उपाय इस पुस्तक में दिये हैं। यह पुस्तक "सचित्र" है। इसमें लिखे नियमों के अनुसार आचरण करनेसे थोडेही दिनोंमें वीर्य स्थिर होनेका अनुभव निःसन्देह होता है। मू. १।) रु.

५ योग साधन की तैयारी।

जो सज्जन योगाभ्याससे अपनी उन्नति करना चाहते हैं, उनको अपनी तैयारी किस प्रकार करनी चाहिये, इस विषयकी सब बातें इस पुस्तकमें लिखीं हैं। मू. १) एक रु.।

६ आसन ।

इसमें उपयोगी आसनोंका वर्णन चित्रोंके समेत दिया है। मू.२)

७ सूर्य भेदन व्यायाम ।

(सचित्र) बलवर्धक योगके व्यायाम। मू. ॥)

"योग साधन" के अन्य पुस्तक छप रहे हैं मुद्रित होते ही सूचना दी जायगी।

४ यजुर्वेदका स्वाध्याय ।

१ यजुर्वेद अ० ३० की व्याख्या ।

" नर-मेध " मनुष्योंकी उन्नति का सच्चा साधन। वैदिक नरमेध कितना उपयोगी है, इस विषयका ज्ञान इस पुस्तकके पढनेसे हो सकता है। मू०१) एक रुपया।

२ यजुर्वेद अ. ३२ की व्याख्या।

" सर्व-मेध " एक ईश्वर की उपासना। य. अ. ३२ में एक ईश्वरकी स्पष्ट कल्पना बताई है। मू. ॥)

३ यजुर्वेद अ. ३६ की व्याख्या।

" शांति-करण "। सच्ची शांति का सच्चा उपाय। व्यक्ति, समाज, राष्ट्र और जगत् में सच्ची शांति कैसी स्थापन की जा सकती है, इस के वैदिक उपाय इस पुस्तक में देखिये। मूल्य ॥)

५ उपनिषद् ग्रंथ माला ।

१ ईश उपनिषद्।

इस पुस्तक में ईश उपनिषदकी व्याख्या है। मू. ॥।=

२ केन उपनिषद्

इस पुस्तकमें केन उपनिषद् का अर्थ और स्पष्टीकरण, अथर्ववेदीय केन सूक्त की व्याख्या और देवी भागवतकी कथाकी संगति बता दी है। उमा, यक्ष, आदि शब्दोंके अर्थ वैदिक प्रमाणों से निश्चित करके बताया है, कि उनका स्थान आध्यात्मिक भूमिकामें कहां है और उनकी प्राप्तिका उपाय क्या है। मू. १।) रु.

६ देवता--परिचय ग्रंथ--माला।

" वैदिक देवता " ओंका सूक्ष्मज्ञान होनेके विना वेदका मनन होना असंभव है, इसलिये इस ग्रंथमाला में " देवता ओंका परिचय " करानेका यत्न किया है। पुस्तकोंके नामोंसेही पुस्तकोंके विषयका बोध हो सकता है-

१ रुद्र देवताका परिचय। मू. ॥)
२ ऋग्वेदमें रुद्र देवता। मू. ॥=)
३ ३३ देवताओंका विचार। मू. =)
४ देवता विचार। मू. =)
५ वैदिक अग्निविद्या मू. १॥)

" अन्य " देवताओंका विचार और परिचय कराने वाले ग्रंथ तैयार हुए हैं, शीघ्रही मुद्रित होंगे।

७ ब्राह्मण बोध माला।

१ शत-पथ-बोधामृत। मू.।)

८ स्वयं--शिक्षक--माला।

१ वेदका स्वयं शिक्षक।

प्रथम भाग। मू. १॥) डेढ रु.

२ वेदका स्वयं शिक्षक।

द्वितीय भाग मू. १॥) डेढ रु०

अग्नि विद्या ।

इस पुस्तक में निम्न लिखित विषय हैं ।

१ अग्नि शब्दका भाव,
२ अग्निके पर्याय शब्द,
३ पहिला मानव अग्नि,
४ वृषभ और धेनु,
५ अंगिरा ऋषि,
६ वैश्वानर अग्नि,
७ ब्राह्मण और क्षत्रिय,
८ जनता का केन्द्र.
९ सब धन संबका है,
१० बुद्धिमें पहिला अग्नि,
११ मनुष्यमें अग्नि,
१२ मर्त्योंमें अमर अग्नि,
१३ वाणीमें अग्नि,
१४ पुरोहित अग्नि,
१५ शक्ति प्रदाता अग्नि,
१६ हस्त-पाद-हीन गुह्य अग्नि,
१७ वृद्ध नागरिक,
१८ मूकमें वाचाल,
१९ अनेकों का प्रेरक एक देव,
२० जीवनाग्नि,
२१ अग्निकी दश बहिनें,
२२ देवोंके साथ रहनेवाला अग्नि,
२३ यज्ञका झंडा,
२४ गुहा निवासी अग्नि,
२५ सात संख्याका गुह्य तत्त्व,
२६ तनूनपात् अग्नि,
२७ यज्ञ पुरुप, यज्ञशाला. मंदिर
२८ परमाग्नि, (चित्र,)
२९ अग्नि सूक्त का अर्थ ।

हर एक विषयको सिद्ध करने के लिये वेद के विपुल प्रमाण दिये हैं । इस पुस्तकके पढने से अग्नि विद्या की वैदिक कल्पना ठीक प्रकार ज्ञात हो सकती है ।

संस्कृत-पाठ-माला।

[स्वयं संस्कृत सीखने का अत्यंत सुगम उपाय।]

हरएक आर्यका कर्तव्य है कि वह संस्कृत भाषा सीखे और वेद तथा आर्ष शास्त्र स्वयं पढे,उसका मनन करे और प्रचार करे।

यह कर्तव्य तबतक ठीक रीतिसे पालन नहीं हो सकता, जबतक संस्कृत सीखनेके सुगम साधन निर्माण नहीं हुए हों। इस कठिनता का हम गत दस वर्षोंसे मनन कर रहे हैं। इन वर्षोंमें हमने अनेक प्रयत्न किये, छोटे और बडे विद्यार्थियोंको भिन्न भिन्न रीतियोंसे पढा कर अनुभव लिया और इतने अनुभव का और मननका निचोड इन पुस्तकोंमें संगृहित किया है। इसी लिये ये पुस्तक अत्यंत सुगम और सबके उपयोगी सिद्ध होगये हैं।

ये पुस्तक हमने छः से दस वर्षोंके बालकों और बालिकाओंको पढाये और अनुभव लिया, कि ये छोटे बालक पहिले महिनेसे ही छोटे छोटे वाक्य संस्कृत में बोलने लगते हैं और इन पुस्तकों की पढाई करना उनके लिये एक बडा आनंद का कार्य हो जाता है!! इसी प्रकार स्त्रियों और पुरुषोंके लिये भी ये पुस्तक अत्यंत लाभकारी सिद्ध हुए हैं।

इसी लिये आपसे निवेदन है कि आप इन पुस्तकों की सूचना अपने समाजके आर्य सभासदों, सदस्यों और प्रेमी भद्र पुरुषोंको दीजिये। हरएक आर्य भाई अवश्य संस्कृत सीखे। कईयों को अबतक पता नहीं है कि ऐसी सुगम पुस्तकें बनी हैं। इस लिये आप यथा संभव जितनोंको इन पुस्तकों की सूचना दे सकते हैं दीजिये, ताकि आपकी प्रेरणा द्वारा वहां के भद्र पुरुष संस्कृत के अभिज्ञ बनें।

आप अपने समाजके अधिवेशनों में इसकी घोषणा दीजिये

और ऐसी व्यवस्था कीजिये कि आपके स्थानपर अधिकसे अधिक मनुष्य संस्कृत पढने वाले वनें।

हरएक की सुविधाके लिये इस संस्कृत पाठ मालाके बारह पुस्तकों का मूल्य. (म० आ० से केवल ३) तीन रु. रखा है। वी॰ पी. से. ४ रु० होगा। इसलिये ग्राहक म० आ० से ही ३) रु. भेजें, वी. पी. से मंगवाने पर उनका व्यर्थ नुकसान होगा। आशा है कि आप इस संस्कृतके प्रचार के लिये इतनी सहायता देंगे।

जहां अन्य स्थानोंमें सहस्रों मनुष्य इन पुस्तकों से लाभ उठा रहे हैं, वहां आपके परिचित मनुष्य क्यों वंचित रहें?

इस लिये इन पुस्तकों की सूचना आप अधिक से अधिक मनुष्योंतक पहुंचानेकी कृपा कीजिये।

संस्कृत पाठमाला के अध्ययन से लाभ।

(१) आप किसी दूसरेकी सहायताके विना अपना कामधंदा करते हुए फुरसत के समय इन पुस्तकोंको पढकर अपना संस्कृत का ज्ञान वढा सकते हैं।

(२)प्रतिदिन घंटा अथवा आध घंटा पढनेसे एक वर्षके अन्दर आप रामायण महाभारत समझने की योग्यता प्राप्त कर सकते हैं।

(३) पुस्तक अत्यंत सुगम हैं। विना नियमोंको कंठ किये आपका संस्कृत भाषामें प्रवेश हो सकता है।

(४) घरमें पुत्रों, पुत्रियों और स्त्रियोंको इन पुस्तकों का पढना और पढाना अत्यंत सुगम है। इस प्रकार आपके घरके सब मनुष्य संस्कृत जाननेवाले हो सकते हैं।

(५) पाठशालामें जानेवाले विद्यार्थी इन पुस्तकों से वडा लाभ प्राप्त कर सकते हैं।

यदि आपके मनमें संस्कृत सीखनेकी इच्छा है तो आप इन पुस्तकों के ग्राहक बन जाइए।

संस्कृत-पाठ-माला ।

[चोवीस भागोंमें सब संस्कृत पढाई हो गई है ।]

वारह पुस्तकोंका मूल्य म. आ. से ३) और वी. पी. से ४)
चोवीस पुस्तकोंका मूल्य म. आ. से ६) रु. और वी. पी. से७)
प्रतिभाग का मूल्य ।—) पांच आने और डा. व्य.-) एक आना ।
अत्यंत सुगम रीतिसे संस्कृत भाषाका अध्ययन करनेकी अपूर्व पद्धति ।

इस पद्धतिकी विशेषता यह है—

१ प्रथम द्वितीय और तृतीय भाग ।=इन तीन भागोंमें संस्कृत भाषाके साथ साधारण परिचय कर दिया गया है ।
२ चतुर्थ भाग । इस चतुर्थ भागमें संधि विचार बताया है ।
३ पंचम और षष्ठ भाग ।
इन दो भागोंमें संस्कृतके साथ विशेष परिचय कराया गया है ।
४ सप्तम से दशम भाग ।
इन चार भागोंमें पुल्लिंग, स्त्रीलिंग और नपुंसकलिंगी नामोंके रूप बनानेकी विधि बताई है ।
५ एकादश भाग । इस भागमें " सर्वनाम " के रूप बताये हैं ।
६ द्वादश भाग । इस भागमें समासों का विचार किया है ।
७ तेरहसे अठारहवें भाग तकके ६ भाग ।
इन छः भागों में क्रियापद विचार की पाठविधि बताई है ।
८ उन्नीससे चौवीसवे भागतकके ६ भाग ।
इन छः भागोंमें वेदके साथ परिचय कराया है ।

अर्थात् जो लोग इस पद्धतिसे अध्ययन करेंगे उन को अल्प परिश्रमसे वडा लाभ हो सकता है ।

यज्ञकी पुस्तक ।

वैदिक यज्ञसंस्था ।

प्रथम भाग ।

मूल्य १) रु. डाकव्यय ।)

इस पुस्तक में निम्न लिखित विषयों का विचार हुआ है।

प्राचीन संस्कृत निबंध ।

१ पिष्ट-पशु-मीमांसा । लेख १

२ ,, ,, ,, ,, २

३ लघु पुरोडाश मीमांसा ।

भाषाके लेख ।

४ दर्श और पौर्णमास (ले०- श्री० पं० बुद्धदेवजी)

५ अद्भुत कुमार-संभव ,, ,, ,,

६ बुद्ध के यज्ञ विषयक विचार (ले०- श्री० पं० चंद्रमणिजी)

७ यज्ञका महत्त्व (संपादकीय)

८ यज्ञका क्षेत्र ,,

९ यज्ञका गूढ तत्त्व ,,

१० औषधियों का महामख ,,

११ वैदिक यज्ञ और पशुहिंसा (ले०- श्री० पं० धर्मदेवजी)

१२ क्या वेदों में यज्ञों में पशुओंका बलि करना लिखा है ?
(ले० श्री० पं० पुरुषोत्तम लालजी)

वैदिक यज्ञ संस्था ।

द्वितीय भाग। मूल्य १) डा० व्य० ।)

मंत्री- स्वाध्याय मंडल, औंध (जि. सातारा)

'केन उपनिषद्'।

इस पुस्तकमें निम्न लिखित विषयोंका विचार हुआ है-

१ केन उपनिषद् का मनन,
२ उपनिषद् ज्ञान का महत्व,
३ उपनिषद् का अर्थ,
४ सांप्रदायिक झगडे,
५ " केन " शब्द का महत्त्व,
६ वेदान्त,
७ उपनिषदों में ज्ञान का विकास,
८ अग्नि शब्दका भाव,
९ उपनिषद् के अंग,
१० शांतिमंत्रोंका विचार,
११ तीनों शांति मंत्रों में तत्त्व ज्ञान,
१२ तीन शांतियों का भाव,
१३ ईश और केन उपनिषद,
१४ " यक्ष " कौन है ?
१५ हैमवती उमा,
१६ पार्वती कौन है ?
१७ पर्वत, पार्वती, रुद्र, सप्तऋषि और अरुंधती,
१८ इंद्र कौन है ?
१९ उपनिषद् का अर्थ और व्याख्या.
२० अथर्ववेदीय केन सूक्तका अर्थ और व्याख्या,
२१ व्यष्टि, समष्टी और परमेष्टी,
२२ त्रिलोकी,
२३ अथर्वाका सिर,
२४ ब्रह्मज्ञानी की आयुष्य मर्यादा.
२५ ब्रह्म नगरी. अयोध्या, आठ चक्र,
२६ आत्मवान् यक्ष,
२७ अपनी राजधानीमें ब्रह्मका प्रवेश,
२८ देवी भागवतमें देवी की कथा,
२९ वेदका वागांभृणी सूक्त, इंद्र, सूक्त, वैकुंठ सूक्त, अथर्व सूक्त
३० शाक्तमत, देव और देवता की एकता,
३१ वैदिक ज्ञान की श्रेष्ठता।

इतने विषय इस पुस्तक में आगये हैं इस लिये उपनिषदों का विचार करने वालोंके लिये यह पुस्तक अवश्य पढने योग्य है।

मूल्य १।) रु. डाकव्यय=) है।

आसनोंका चित्रपट

आसनों का व्यायाम लेनेसे सहस्रों मनुष्योंका स्वास्थ्य सुधर चुका है, इस लिये आसन व्यायाम से स्वास्थ्य लाभ होनेके विषयमें अब किसी को संदेह ही नहीं रहा है। अतः लोग सब आसनोंके एक-ही कागज पर छपे-हुए चित्रपट बहुत दिनोंसे मांग रहे थे। वैसे चित्रपट अब मुद्रित किये हैं. २०-३० इंच कागज पर सब आसन दिखाई दिये गये हैं। यह चित्रपट कमरे में दिवार पर लगाकर उस के चित्रोंको देख कर आसन करनेकी बहुत सुविधा अब हो गई है।

मूल्य केवल ≥) तीन आने और डाक व्यय -) एक आना है।

स्वाध्याय मंडल

औंध (जि. सातारा)

महाभारत।

हिंदी भाषा—भाष्य—समेत
तय्यार है।

१ आदिपर्व	पृष्ठ संख्या ११२५ मूल्य म. आ. से ६) रु. और वी. पी. से ७) रु.
२ सभापर्व	पृष्ठ संख्या ३५६ मूल्य म. आ. से २) और वी. पी. से.) रु. २॥)
३ वनपर्व	पृष्ठ संख्या १५३८ मूल्य ८) रु. और वी. पी. से. ९) रु.
४ विराटपर्व	पृष्ठसंख्या ३०६ मू. म. आ. से १॥) और वी. पी. से २) रु.
५ उद्योगपर्व	पृष्ठ संख्या ९५३ मू. म. आ० से ५) रु. और वी. पी. से ६ रु.

६ महाभारत समालोचना

१ प्रथम भाग। मू. म. आर्डरसे ॥) वी. पी. से ॥|≥) आने।
२ द्वतीय भाग। मू. म. आर्डरसे ॥) वी. पी से ॥|≥) आने।
महाभारतके ग्राहकोंके लये १२०० पृष्ठोंका ६) रु. मूल्य होगा।

मंत्री-स्वाध्याय मंडल, औंध, (जि. सातारा)

मुद्रक तथा प्रकाशक— श्री० दा० सातवलेकर, भारत मुद्रणालय।
स्वाध्याय मंडल, औंध (जि. सातारा)